दो बहनें

घर में प्रवेश करते ही आशा ने जान लिया, ज्ञानू बाबू बैठे हैं।

आशा की माँ जानकी को जब से यह मालूम हुआ है कि ज्ञानू माँ के सुख से वंचित है, विमाता और पिता के दुर्व्यवहार के कारण वह उन्हें छोड़ आया है, तब से वह उसके प्रति कुछ अधिक सजग हो गई है। प्रायः नित्य ही घड़ी-आध-घड़ी को वह उनके यहाँ हो आती है। ज्ञानू भी जब चाहता है, तब उनके यहाँ चला जाता है। इधर कई दिनों से वह उसके यहाँ आया नहीं था। तभी उन्हें बैठा देखकर आशा बोली—आज पश्चिम में यह सूर्योदय कैसे हुआ ?

व्यङ्ग्य-विलसित उसकी मुद्रा पर ईषत् हास झलक पड़ा।

"अब बोलो अम्मा"—भावुकता में बहता हुआ ज्ञानू बोला—जो बात अभी मैं तुमसे कह रहा था, वह कितनी सच निकली! ऊपर से हँसकर, या ताना मारते हुए, बात कह देने से क्या होता है? अन्तर्ध्वनि भी तो कोई चीज़ होती है! तुम जानती हो अम्मा, पिताजी के यहाँ मैं क्यों नहीं जाता हूँ। पिछले रविवार को उन्होंने एक महाशय को पार्टी दी थी, पार्टी। मेरे पास भी, आने का संदेश नयीअम्मा ने भिजवा दिया था। बड़ी कृपा

मेरे ऊपर की थी उन्होंने। पर मैं नहीं गया। क्यों, क्यों जाता मैं? मैं जब उनके लिए कोई चीज नहीं हूँ, तो उनके यहाँ क्यों जाऊँ? तुम्हारे सामने की तो बात है। जब उन्होंने उस दिन बहुत आग्रह किया, तो पिण्ड छुड़ाने के लिए उस समय मैंने जाना स्वीकार कर लिया था किन्तु फिर ऐन वक्त पर, जब मेरे भीतर, वहाँ जाने की प्रेरणा ही नहीं हुई, तो मै कैसे जाता। मै नहीं गया। तब से बराबर 'बराबर उनकी यही शिकायत बनी हुई है कि ज्ञानू अपने मन से चाहे जो कुछ करता रहे, पर किसी के कुछ कह देने पर उससे उसकी पूर्ति का भरोसा करना सरासर नादानी है। मैं कहता हूँ—हो नादानी! मै जैसा हूँ, वैसा ही आचार भी रखना चाहता हूँ। दुनियाँ मे ऐसे लोगो की कमी नहीं है, जो अपने सद्गुणो से प्रेम करते हैं। मै वैसा नहीं हूँ। मैं तो अपनी नादानियो से संलग्न हूँ। अब तुम्हीं फैसला कर दो अम्मा कि मै कहाँ तक दोषी हूँ। मेरा वहाँ पर है कौन, जिसके लिए मै वहाँ जाऊँ? पचास रुपये जो हर महीने भेज देते है, क्या इसी से उनको इतना बड़ा अधिकार प्राप्त हो गया है कि जब चाहेंगे, तब मुझे बुला लेंगे? मै कहता हूँ—यह कभी हो नहीं सकता! जाऊँगा, तो अपनी इच्छा से जाऊँगा—नहीं तो किसी तरह नहीं जाऊँगा। ठोकर मार दूँगा, ऐसे पचास रुपये पर। मेरे लिए वे चीज क्या है?

बात कहते-कहते ज्ञानू का मुख लाल हो गया है, आँख इतनी

आशा बोली—मै माफी मांगती हूँ, हाथ जोड़ती हूँ। मा इस बात को और आगे मत बढ़ाओ। जान पड़ता है, तुम्हारा चित्त इस समय बहुत अशान्त हो रहा है।

आशा को बात अधूरी ही छोड़ देनी पड़ी। वह कुछ और कहना चाहती थी। पर उसने देखा—ज्ञानू से वह इससे अधिक कुछ कह नहीं सकती। आज दिवाकर को उसने रायसाहब के यहाँ देखा था! देखा था, वह कितना लालायित है उससे बातें करने के लिए। तभी उसे आवश्यकता जान पड़ी कि ज्ञानू भी वहाँ रहे। वह नहीं पसन्द करती कि उस जगह आते-जाते वह उसको न पाकर पाये उस दिवाकर को। वह नहीं चाहती कि दिवाकर अगर उससे कभी बात भी करे तो उसके पास ज्ञानू न हो। माना कि सामने न रखकर भी वह उसे निकट देखती रह सकती है। किन्तु वह यह भी तो चाहती है कि दिवाकर हो कि करुणाकर—वह कोई भी हो, उसे भी तो यह जानने की जरूरत है कि उसके निकट, पहले से, कोई है और वह अकेली नहीं है। यद्यपि वह जानती है कि ज्ञानू जब निकट के घर को छोड़कर एक बार चला ही गया है, तब वह फिर आकर उसमें रहेगा नहीं। किन्तु वह यह भी चाहती है कि जैसे भी हो, उसको वहाँ रहना ही चाहिये। विमाता उसे नहीं चाहती, न चाहे। एक विमाता ही तो वहाँ है नहीं। पिता भी तो हैं—बहन भी तो है। हालाँकि द्विमातृ है, किन्तु उसे प्यार कितना करती है! फिर मान लो,

कोई न भी चाहे। तो घर क्या ऐसी चीज़ है कि उसे छोड़ दिया जाय ! अपने अधिकार से आपही च्युत हो जाने का अर्थ क्या है ? क्या यह कोरा त्याग है ? निर्मल--साधना-मूलक ? आशा नहीं मानती। वह इसे दुर्बलता समझती है। उसकी दृष्टि मे कायरता है यह।

आज यही सब वह ज्ञानू से कह लेना चाहती थी। किन्तु उसकी मनोदशा देखकर वह कुछ कह न सकी। कमरे मे जाकर उसने कपड़े बदले। फिर झट से वह रसोईघर मे चली गयी। वहाँ लता खाना बना रही थी।

"अरे ! तूने तो आधा सफ़र तै कर डाला। अच्छा, धुएँ मे अब और बैठने की जरूरत नहीं है। कपड़े बदलकर मै अभी आयी। ज्ञानू बाबू भी खायेंगे। एक साग और ज्यादा बना लेना होगा। ग्वाला दूध दे गया कि नहीं ?"—आशा ने पूछा।

गुनिया रोटी पो रही थी। बोली—दे गया है।

आशा ने इकन्नी फेंककर कहा—जा झट से, चार पैसे का दही भी ले आ। बढ़िया लाना। मलाई का पर्त उसपर ज़रूर रखवा लेना।

वह कपड़े बदलने चली गई। गुनिया की जगह जानकी आकर बैठ गयी।

ज्ञानू आँगन मे चारपाई पर बैठा हुआ था। आशा जब उस ओर से जाने लगी तो बोली—बहुत नाराज़ जान पड़ते हो !

"जाने दो। और बात करो"—भावगर्वित लालू कहकर चुप हो रहा। आशा कहने ही वाली थी कि जो बात अपने समक्ष उपस्थित हो, उसे छोड़कर दूसरी कोई बात कर सकना तुम्हारे ही लिए अधिक युक्तिसंगत और हितकर हो सकती है, पर मेरे लिए उसका कोई महत्त्व नहीं है। किन्तु उसी समय लालू ने पूछ दिया—अच्छा बोलो, कल प्रातःकाल मेरे यहाँ चाय पीने आओगी?

हँसती हुई आशा बोली—तो यह कहो कि यह सब जो कुछ भी था, वह उस निमंत्रण का भूमिका भाग था।

"अच्छा, यही सही। "हाँ, तो बोलो, क्या कहती हो?"—अधैर्य के साथ लालू ने पूछ दिया।

आशा बोली—अभी आती हूँ।

वह अपने ख़ास कमरे में चली गयी। किन्तु वहाँ पहुँचकर कपड़े बदलने की कोई चेष्टा तो उसने की नहीं। हाँ, स्वर्गीय पिता के एक चित्र के सामने जाकर ज़रूर खड़ी हो गयी।

उस समय छः बज गया था। कमरे में अन्धकार छाया हुआ था। बिजली का बटन दबाते ही चारों ओर प्रकाश फैल गया। पिता का तैल-चित्र अब उसके सामने था। देर तक आशा टक-टकी लगाये उस चित्र की ओर देखती रही। क्षण भर में उसकी आँख भर आयी। किन्तु किसी प्रकार उस चित्र में—पिता के मुख

पर—उदासीनता का कोई भाव उसे देख नहीं पड़ा। सदा की भाँति उनकी हँसती हुई मुद्रा मानो अब भी यही कह रही थी कि संसार को दुःख का आगार मत समझो। उल्लास और उमंग ही जीवन है। जितने दिन भी रहो, सुख से रहो। अपनी कामनाओं को सफल बनाते चलो। कठिनाइयों से युद्ध करो। जीवन को सफलता के नाम पर उत्सर्ग कर दो। किन्तु कभी दैन्य मत प्रदर्शित करो—कभी घुटने मत टेको। असफल भी होओ, तो उसका रोना मत रोने बैठो। पराजित होने का अर्थ ही यह है कि तुम्हारे प्रयत्न में कमी है। अभी पूरा जोर तुम लगा नहीं सके। फिर कोशिश करो, फिर हिम्मत बाँधो। एक बार और सही। जीवन आखिर एक प्रकार का युद्ध ही तो है। कोशिश बराबर जारी रक्खोगे, युद्ध-क्षेत्र में डटे रहोगे, विवेक और वस्तु-स्थिति के मर्म को सदा सजग भाव से ग्रहण किये रहोगे, तो एक-न-एक दिन अवश्य कृतकार्य होओगे—सफलता तो तुम्हारे पैर चूमेगी।

चित्र में मुखरित पिता के इस आदर्श का स्मरण करके आशा अलग हट गयी। अब उसके भीतर किसी प्रकार की उदासीनता न थी, उद्वेग न था। थी मन्द-मन्द लहराती हुई एक शान्त जलधारा—एक जीवन-रागिणी। वह कपड़े बदलती हुई सोचती जाती थी—विश्राम की मुझे अभी आवश्यकता ही क्या है? जीवन के अगाध समुद्र में तैर रही हूँ। यहाँ प्रगति ही कर्तव्य है, धैर्य ही जीवन। कातरता और व्याकुलता कैसी!

—और यह बेचैनी ?

नहीं, मुझमें कोई बेचैनी नहीं है। मैं किसी की कोई नहीं हूँ।

कपड़े बदलकर आशा बाहर आ गयी। ज्ञानू उसी तरह बैठा न रहकर गाव-तकिया लगाकर लुढ़क रहा था। आशा के आते ही वह उठ बैठा।

आशा ने बिजली का बटन दबाते हुए कहा—अरे, मुझे ख़याल ही न रहा कि तुम अँधेरे मे बैठे हो !

ज्ञानू इसी क्षण बोल उठा—तुम ठीक कहती हो आशा। मैं सचमुच अन्धकार में हूँ। फिर वह सोचने लगा—अगर मेरी माँ बनी होतीं, तो आज मैं आई० सी० एस्० होता। तब पिताजी मे इतनी हिम्मत हो सकती थी कि मुझे ठुकरा देते ? आज वे मेरे मुँह की ओर देख-देखकर रहते। मेरे सकेतो तक की उन्हें परवा होती ! मेरा दुख देखकर वे रो पड़ते !

ज्ञानू की वाणी तक मे अश्रु भर आये।

आशा अब स्थिर न रह सकी। अभी क्षण भर पूर्व उसने जो कुछ निश्चय किया था, ज्ञानू के इस स्वरूप ने उसे उससे आगे बढ़ा दिया। वह भूल गयी कि वह अभी उसका बन ही क्या सका है। वह यह भी भूल गयी कि उसे एक यात्रा पार करनी है, उसका अपना एक ध्येय है, व्रत है। एक हिलोर इधर से आयी—एक उधर से। उसे प्रतीत हुआ—संसार मे कुछ नहीं है। जो कुछ भी है, वह यही—दो प्राणों का मिलन, मानवात्मा

की यही समवेदना। आत्मा के साथ यही लिपटकर सोया हुआ है, जीवन मे यही एक सत्य है। और कहीं कुछ नहीं है।

इन्हीं विचारो मे उन्मथित होकर आशा बोली—अरे! तुम रोते हो! क्या दु ख है तुमको? मेरे और अम्मा के रहते तुमको कोई दुख नहीं हो सकता। दु:ख चीज क्या हो सकती है तुम्हारे लिए! कंटकों को कुचल-कुचलकर तुम्हे चलना पड़ेगा। पुरुष हो तुम। यह क्यो भूल जाते हो कि पुरुष सिंह का प्रतिरूप होता है। कभी वह रोने नहीं बैठता; कभी कातर नहीं बनता, घब-राता नहीं। गोली खाकर भी वह घातक पर वार करता है। फिर तुम्हारा अभी बिगड़ा क्या है? रियासत के आधे भाग के तुम अधिकारी हो।

तब आँसू पोछ-पोंछकर, कुछ स्थिर होकर, क्रुद्ध केसरी की भाँति गरजा हुआ ज्ञानू बोल उठा—मरी रियासत। वह मेरे लिए कोई चीज नहीं है। तुम नहीं जानती आशा, मेरे भीतर कितना गहरा घाव है। तुम तो महज उतना ही जान पाती हो, जितना मैं बक डालता हूँ। असली आघात के मर्म को इस तरह तुम भला क्या समझोगी? कभी तुमने एक बात कही थी, आन्तरिक अनु-भव की चीज थी वह। तुमने कहा था कि बहुत-सी बाते ऐसी होती हैं, जो कही नहीं जाती, केवल अनुभव की जा सकती हैं। कहने मे वे कभी आ नहीं पाती। बिलकुल यही स्थिति इस समय मेरी है।

में उसका गला बज रहा है। वह गम्भीर निद्रा में लीन है। कोई कामना उसे छू नहीं गई, कोई चिन्ता उसके मन पर टिक नहीं सकी। काश, आशा को भी ऐसी नींद मिलती ! सड़क पर किसी कार का हार्न सुनाई पड़ रहा है, फिर किसी इक्के वाले की तान—

नारा झब्बादार लइयो।
मथुराजी को जइयो, खुरचन पेड़ा लइयो।
खिलइयो अपने हाथ ; नारा झब्बादार लइयो !

आशा के होंठों पर हास फूट पड़ा।—वाह ! कितना मादक संगीत है !

किन्तु कैसा विचित्र है यह नागरिक जीवन भी। रात के बारह बजे भी जीवन-संघर्ष और उसके राग-रंगों से छुट्टी नहीं है। फिर दूसरों को भी उसका झकोरा सहना ही पड़ता है। शान्ति से कोई सोना चाहे, तो सो भी न सके।—आशा ने करवट बदली, तो फिर वही गायन उसके कानों में गूंज उठा—सजनवाँ, जिया न मानत मोर !

—गलत बात है। कौन कहता है, आशा का जी नहीं मानता ! झूठ—बिल्कुल झूठ !

—जाने क्या हो गया है ! संयम उसके लिए जैसे कोई चीज़ ही न हो। रात के बारह बजे उस अट्टालिका पर सजनवाँ-

वजनत्रों की सूझी है ! सो क्यों नहीं जाता रे ज्ञानू ! दूसरे दिन क्या तुझे आफिस नहीं जाना है ?

—और तू आशा। तू हीं क्यों नहीं सो जाती। दूसरो को ही देखना आता है तुझे। पगली !

आशा उठ बैठी। सुराही से गिलास में पानी उँडेला और पी लिया। फिर लेट रही।—शरीर भी तो भारी हो रहा है। और ज्ञानू का यह ग्रामोफ़ोन और सिर खा रहा है। लो, दूसरा रेकॉर्ड चढा दिया—कोयाल बोली। अच्छा, सुबह हो जाय, तो इनकी खबर ली जाय। आधी रात को, सोने के वक्त, इनकी कोयल बोलती है !—किन्तु उसका चाय का निमंत्रण ! ..

—इस लालसासक्त यौवन को क्या किया जाय, जो यह चुप, शान्त, बना रहे। कैसा उच्छृंखल हो रहा है !

अब आया दिवाकर। खाकी रेशम का सूट—पैरों में सफ़ेद कैन्वैस के जूते। रेशमी रूमाल कोट के दायें ओर, जेब से ज़रा निकाले हुए, बिल्कुल फाउन्टेन पेन के गोल्डेन क्लिप से सटा हुआ। सिर पर सोला हैट। बायों हाथ पैंट के जेब में, दायें में सुलगती सिगरेट। सीढ़ी से उतरता हुआ आया। बरसाती के पास ज़रा-सा रुककर— आज ये गमले मुझे भी बहुत प्यारे लग रहे हैं।

—जी हाँ, क्यों न प्यारे लगेंगे ! आशा की दृष्टि जो उन पर जा पड़ी है !

"वर्षा के जल मे इनकी पत्तियाँ धुलकर बिलकुल अपने प्रकृत रूप मे खिल उठी हैं !"

—आज ही तो यह नया-नया पानी बरसा है ! आज ही तो ये पत्तियाँ धुली है ! फिर वे प्रकृत रूप मे खिल भी उठी है ! अच्छा तो क्या आप यह चाहते थे कि अप्रकृत रूप मे खिलतीं ! प्रशंसा आपकी बड़ी कवित्व-पूर्ण होती है !

—लेकिन आप यह सब कह किससे गये ? उस गमले से, या खिलनेवाली उन पत्तियों से ? क्योंकि आशा ने तो आप की बात का कुछ नोटिस लिया नहीं ।

—अच्छे छके आप !

अब आयी वह डायरी, जिसमे यह कविता लिखी थी—'मुझसे भी कर लो बात प्रिये !'

—उन छोकरों को यह सूझा क्या है ? चौबीसों घंटे इनको प्रेम-ही-प्रेम दरस पड़ता है । किसी को जो जरा-सा सुन्दर देखा कि बस, प्रेम हो गया और कविता भी बनने लगी !

इसी समय हाल-क्लाक का घंटा बजा—एक ।

—अरे ! एक बज गया । अब सो जाना चाहिए । आज भी सो रहा जाता । ग्रामोफ़ोन उसने बन्द करके रख दिया है । लेकिन इससे क्या ? यह कैसे कहा जा सकता है कि वह सो ही गया है । लेकिन नींद अगर न आये तो ? मुझे तो सोना है । न क्या नहीं

आशा बोली—पानी आ गया। फिर वह अपना बिस्तर झट से समेटने लगी। फिर बोली—पहले मेरी चारपाई कमरे में रखवा दो।

लता भी उठ बैठी थी। वह एक ओर खड़ी-खड़ी ऊँघ रही थी। आशा की चारपाई कमरे में रखवाकर जानकी लता को लेकर नीचे चली गयी। पानी खूब जोर से बरसने लगा।

बादल खूब गरज-गरजकर बरस रहे हैं। अब केवल वर्षा के स्वर ही सुनाई पड़ रहे हैं। कभी-कभी जो हवा के झकोरों से पानी की बौछार जोर मारती है, तो कमरे की खिड़की पर लगी हुई टीन की छाया लांघकर, चिक की तीलियों का अन्तर भेदती हुई, कमरे के अन्दर पड़ी आशा की चारपाई के पैताने तक जा पहुँचती है। किन्तु वर्षा की झड़ी के इस गम्भीर नाद में अर्धरात्रि के उत्तरार्द्ध की वह मूकता लिप्त कैसी हो गयी है।

आशा को अब नींद आ गई है। इस स्थूल जगत् का अब सब कुछ सो गया है। शरीर के साथ-साथ मन भी थका था, देह के साथ-साथ प्राण और उसका मलाप भी ऊब उठा था। अब उसने जरा शान्ति पायी है। किन्तु यही वह स्थिति है, जब धर्म, संस्कृति, समाज और उसके भीतर से गुजरती हुई मानवता, कुछ काल के लिए निर्बन्ध हो पाती है। जीवन की सीमाएं और सामाजिक मर्यादाएँ, अब, उसके सूने क्रोड़ के निकट, हाथ बांधे खड़ी हैं। आपत्तियों की यहाँ गति नहीं है। जैसे सभी कुछ सुलभ

हो गया है, दुष्प्राप्य अब कुछ नहीं है। हँसना-बोलना तो मामूली बातें हैं। गले में बाहें डाल के—लिपट के—भेटने को भी यहाँ कोई देखेगा नहीं। जीवन ने इन घड़ियों के लिए त्राण पा लिया है। तृष्णा के खुले खेलों का यही तो वह सुविस्तृत पुलिन है, जहाँ सृष्टि का दारुण सघात, जीवन का निखिल वैदग्ध्य निर्जीव-निरवलम्ब होकर भूमिशायी बन गया है।

घंटे भर से बराबर पानी बरस रहा है। आशा को गम्भीर निद्रा आ गई है। इस समय उसके शरीर पर केवल एक बारीक साड़ी है और वक्ष पर रेशमी झीनी बनियाइन। बायाँ हाथ उसका छाती पर रक्खा हुआ है। दाहने हाथ की तर्जनी और अंगुष्ठिका कभी-कभी हिल उठती हैं। जान पड़ता है, स्वप्न में भी उसका अध्ययन चल रहा है। कालेज में लेक्चर अटैण्ड कर रही है, कापी पर कुछ नोट्स लेती जाती है। सम्भव है, किसी को पत्र लिख रही हो। किन्तु कौन जाने क्या बात है!

पानी तो थोड़ी देर में बन्द हो गया; पर झिल्ली का गान अवश्य गुंजित होने लगा। कहीं-कहीं दादुर भी उछल-उछलकर अपनी नवनिर्मित कविता सुनाने लगे। किन्तु अरे, यह बात क्या है!—आशा के होंठ काँप रहे हैं। कुछ अस्फुट शब्द भी फूट रहे हैं—न-नहीं पीती। नाराज़ हो? फिर पी लूंगी। . . अरे! अरे!! यह क्या!!!

आशा यकायक घबराकर उठ बैठी। पसीने से तर हो गई

आलस्य की मीठी-मीठी करवटें बदलने का जो सुख है, आप लोग उसको क्या समझें! किन्तु जिन लोगों ने स्वास्थ्य खो दिया है, जीवन के आरोह-अवरोह से जिन्होंने छुट्टी ले ली है, उनके लिए वैसा सोचना ठीक ही है।

तीसरे दिन की बात है। प्रातःकाल, ज्ञानू चाय पी रहा था कि रायसाहब का आदमी आ पहुँचा। दूसरे खंड के जिस कमरे में वह बैठा हुआ था, वहाँ पहुँचकर उसने सलाम किया। फिर एक पत्र उसके हाथ में दे दिया।

चाय पीना बन्द न करके ज्ञानू ने पत्र को टेबिल पर ही रहने दिया। नौकर खड़ा हुआ उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। दो मिनट बाद ज्ञानू ने पूछा—बाबू की तबियत तो ठीक है?

"बिल्कुल ठीक है बाबू। आपको याद किया है।" नौकर ने कह दिया।

तब चाय का कप प्लेट में रखकर ज्ञानू पत्र पढ़ने लगा। पत्र नयीअम्मा का लिखा हुआ था।

चिरंजीव ज्ञानू,

उस दिन तुम आये नहीं, यह देखकर मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा। तुम्हारे बाबू भी बार-बार पूछते रहे। इधर यह भी सुनने में आया, तुमने काटन-मिल में नौकरी कर ली। काम में लगे रहना तो अच्छा ही है; लेकिन हम लोगों का सम्मान देखकर

करे। वह इस विषय में कुछ सुनना पसन्द नहीं करता। अपने आप वह भले ही कुछ सोचा करे; लेकिन कोई दूसरा उनके सम्बन्ध में क्यों कोई निष्कर्ष निकाले, जब कि वह उनकी प्रकृति की पूरी जानकारी नहीं रखता। इसीलिए तब—"यह बात नहीं है अम्मा। चिट्ठी लिखने के सम्बन्ध में बाबू आलसी भी कम नहीं हैं। नयीअम्मा से ही लिखने को कह दिया होगा।" कहकर ज्ञानू चुप हो गया।

चार

कई महीने से ज्ञानू पिता के यहाँ नहीं गया है। एक दिन उनसे बात ही बात में लड़ बैठा था। बात थी तो केवल सिद्धांत की, किन्तु ज्ञानू उसे सुनकर इतना उत्तेजित हो गया कि अपने को सम्हाल न सका।

उन दिनों उनके कुटुम्बियों में एक नया विवाह होने जा रहा था। लड़की की माँ का विधवा-विवाह हुआ था। उसी द्वितीय पति की वह संतान थी। लड़का उस विवाह के पक्ष में था। किन्तु उसके पिता तथा उनके बन्धु-बान्धव इस सम्बन्ध के लिए तैयार न थे। लड़के का कहना था कि विवाह करूँगा, तो यहीं करूँगा, अन्यथा विवाह कभी करूँगा ही नहीं। इसी बात पर पिता ने लड़के को घर से निकाल दिया। लड़के ने भी विवाह कर लिया। पिता ने अपनी सारी सम्पत्ति अपने बड़े लड़के के नाम कर दी।

छोटे लड़के को एक पाई भी नहीं दी । वह उनकी द्वितीय पत्नी से उत्पन्न पुत्र था और बचपन में ही उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया था ।

रायसाहब का कहना था—लड़के ने गलती की है। उसे अभी अपने समाज और कानून का पता नहीं है। पिता का वह कर ही क्या सकता है ? उसके हाथ में शक्ति ही क्या है ? अगर पिता ने सारी सम्पत्ति स्वयं अर्जित की है, तो उसे कानूनन यह अधिकार है कि वह चाहे तो किसी लड़के को उसमें से एक पाई भी न दे। रह गयी बात उस लड़की से प्रेम होने की। सो यह जोश थोड़े ही दिनों तक चलता है। दो-चार वर्ष बीत जाने पर देखना, लड़का खुद अपनी इस ज़िद पर नादिम होगा—पछ-तायेगा। जब वह देखेगा कि मेरा बड़ा भाई खुशहाल है, तब वह द्वेष से जल उठेगा—अगर उसे कहीं कोई जीविका नहीं मिली, तो उसका जीवन खतरे में पड़ जायगा। इस तरह दोनों के जीवन बरबाद हो जायेंगे। समाज-सुधार का ठेका लेनेवाले ये नासमझ लोग अपने पीछे छोड़ ही क्या जाते हैं ! दुनिया के लिए वे एक जानवर की तरह होंगे। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि एक सिद्धान्त पर उन्होंने अपना बलिदान किया !

पिता की ये बातें सुनकर ज्ञानू आग हो गया। बोला—लड़के ने ही गलती की है ! और उस कामी, नराधम पिता ने अपना दूसरा विवाह करके कोई गलती नहीं की। बहुत बड़ा पुण्यार्जन

हो! एक दिन खाना न मिले तो आटा दाल का भाव मालूम पड़ जाय!

तब ज्ञानू अपने इस अपमान को सहन न कर सका। वह बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप बँगले से बाहर हो गया। कई दिन तक उसका पता नहीं चला। अन्त में रायसाहब ने उसे बुलाया भी; परन्तु ज्ञानू ने बँगले में रहना किसी तरह स्वीकार नहीं किया। तब से बराबर वह शहर के अपने दूसरे मकान में रहता है।

जब से नयीअम्मा की इस चिट्ठी में ज्ञानू ने पिता के सम्बन्ध में इतना पढ़ा है कि वे भी तुझे बार-बार पूछते रहे, तब से उसे पिछली बातों की ही याद बराबर आ रही है। वह बार-बार यही सोचता है कि मतभेद रखते हुए भी पिता-माता के सम्बन्ध रहते हैं, रक्खे जाते हैं। मेरा अलग होना, ऐसी दशा में, सचमुच, मेरी ही क्षुद्रता तो नहीं है!—आशा ने उन लोगों से प्रकट किया कि ज्ञानू हम लोगों से घृणा करता है। वे शायद सोचते होंगे कि उसका विश्वास है कि पिता ने दूसरा विवाह करके अपनी कामुकता का ही परिचय दिया है। उन्हें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था, जब कि विधवा-विवाह को वे शास्त्र-संगत नहीं मानते।

—पिता जी ऐसा सोच सकते हैं। शायद अनुभव भी करते हों कि ज्ञानू का यह कहना ठीक ही है। और तभी वह घृणा भी

करता है। किन्तु इस प्रश्न को लेकर मैं उनसे घृणा क्यों करने लगा! अच्छा, तब शायद वे यह सोचते हैं कि ज्ञानू समझता है कि अगर मैं दूसरी शादी न करता, तो सारी सम्पत्ति का अधिकारी वह खुद होता। और इस तरह वह आधी ही पायेगा। इसीलिए उसे हम लोगों से द्वेष रहता है।'

अब ज्ञानू को सन्देह हो चला कि सम्भव है, पिता तथा नयी अम्मा से मिलना-जुलना एकदम से बन्द कर देने के कारण ही उनमें यह भ्रम फैल गया है। देखो तो, बात कहाँ की कहाँ जा पहुँची है! किन्तु इसी क्षण वह यह सोचकर झुँझला उठा कि उन्हें पता होना चाहिए, उस दिन उनके शब्द क्या थे! उन्होंने कहा था कि तुम मेरी पैदा की हुई सम्पत्ति पर गुलछर्रे उड़ा रहे हो! अगर एक दिन भी खाना न मिले, तो आटा-दाल का भाव मालूम पड़ जाय! असल चीज तो यह है। उन्हें अपनी इस बात का भी तो कुछ ख़याल होना चाहिये। नयीअम्मा ने लिखा है—काम में लगना तो अच्छा है, लेकिन हम लोगों की प्रतिष्ठा देखकर चलते, तो अच्छा था।...तो मैंने मिल में नौकरी करके उनकी प्रतिष्ठा पर आघात किया है! नयीअम्मा, तुम यह क्यों नहीं सोचतीं कि मैंने तत्काल अपनी प्रतिभा का परिचय देकर बाबू के इस कथन के दर्प को मिट्टी में मिला दिया है कि तुम मेरी पैदा की हुई सम्पत्ति पर गुलछर्रे उड़ा रहे हो! मैंने यह दिखला दिया है कि तुम्हारे इस वैभव को लात मारकर भी

मेरे गुलछर्रों में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता ! एक दिन भी तुम्हारी रसोई का मोहनभोग ग्रहण न करके मुझे आदान-प्रदान के भाव का पता नहीं चल सकता ! यहीं तो तुम लोगों की हार है।

संकट आ गया था। ज्ञानू यही सब सोचता हुआ, जानकी को आगे करके, आशा से मिलने चल दिया।

पाँच

अम्मा के साथ ज्ञानू को भी आया जानकर आशा ऊपर के वस्त्रादि सम्हालकर बैठ गयी। खुले हुए सिर को भी उसने साड़ी से ढक लिया। रूमाल उसके हाथ में था और उसमें यूडिकोलन आयल पड़ा हुआ था। ज्ञानू के सामने आते ही वह मुसकराने लगी। बोली—यों तो इतनी जल्दी तुम्हारा दर्शन होने की उम्मीद थी नहीं। इसलिए मैंने सोचा, बीमारी का बहाना करके पड़ रहूँगी, तब शायद तुम आओगे।

यों भी आशा का रंग हमेशा गुलाब के वर्ण का है। थोड़ी-सी भी लज्जा या उत्तेजना उदित हो उठने पर प्रतीत होने लगता है, मानो मनोभावों को यथार्थ रूप से व्यक्त करने के लिए उसका रक्त भी बाहर फूट ही पड़ेगा—बन्धन में, वह भी किसी तरह बद्ध नहीं रह सकेगा। पर इस समय ज्वर के कारण नायिका के

साथ-साथ अधरों पर भी कुछ अधिक लालिमा झलक रही थी। जिन पर आशा ने बात कह दी ऐसी मीठी। किन्तु बात इतनी ही होती, तो भी गनीमत थी। बात के साथ-साथ उसने थोड़ा मुसकरा भी दिया। तो अब ज्ञानू का यह लालसा-मत्त मन क्या करे? —कहाँ जाय?

जानकी रसोईघर में लता से जुखांदा तैयार कराने चली गयी थी। ज्ञानू ने एक बार इधर देखा, एक बार उधर और कह दिया—मेरे यहाँ चाय पीने जो नहीं आयीं, उसी का तुम्हें यह दंड भुगतना पड़ रहा है।

बात ज्ञानू ने बिल्कुल ठीक ढँग से कह दी, मर्म-स्पर्श करते हुए। भीतर के पुलक को भी वह संयत न रख सका। होठों पर भी उसका जरा-सा हास मुद्रित हो ही गया।

किन्तु आशा ने उसकी इस बात को अनसुनी करते हुए कुछ कहा नहीं। हाँ, जरा-सा मुँह बना दिया। साथ ही ज्ञानू की ओर न देखकर, उसकी बात की उपेक्षा करके भी, स्वप्न की बात का उसे स्मरण हो आया। वह सोचती रही—किन्तु इनसे वह बात प्रकट क्यों करूँ!

ज्ञानू की दृष्टि आशा के क्षण-क्षण के भावोद्रेक को लक्ष कर रही थी। क्षण में उसे प्रतीत होता, वह उसके अत्यन्त निकट है। किन्तु फिर थोड़ी ही देर में वह सोचने लगता—वह उससे बहुत दूर है, बहुत अधिक दूर।

एक बार फिर आशा ने सोचा—क्या यह बात उनसे कहने की है ? फिर मस्तक को हाथ पर रखकर उसने जो उसकी ओर देखा, तो उसका सारा संकल्प-विकल्प अस्त-व्यस्त हो गया। रूखे से वह बोली—तुम्हारी चाय के कारण ही, सच पूछो तो, मुझे नुकसान हुआ है।

उत्कंठा कुतूहल से ओत-प्रोत लालू बोल उठा—इसका मतलब ?

"सोचा था, तुमसे उसकी चर्चा नहीं करूँगी" उत्कंठित आशा बोली—किन्तु फिर सोचकर देखा कि छिपाने के लिए उसमें रक्खा क्या है ! तुमने जब घर पर मुझे चाय पीने के लिए निमंत्रित किया, तब मैंने अपने उत्तर के दूसरे पहलू की ओर नहीं देखा था। किन्तु फिर मैंने अनुभव किया, मेरी ही बात मेरे ही अन्तःकरण में चुभ रही है। सोच-विचार में मुझे बड़ी रात तक नींद नहीं आयी। तुमने भी शरारत करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। ग्रामोफोन बजाना जो शुरू कर दिया, तो एक बजे तक उसे बजाते ही रह गये। और रेकार्ड भी लगाये, तो ऐसे बाँके कि ... .. अब क्या उन्हें दोहराऊँ ? प्रमाद की भी एक सीमा होती है।.. फिर रात में पानी भी काफी बरसा। कमरे में बौछार आती रही। संयोग से खिड़की खुली रह गयी थी। तभी मैंने क्या देखा कि मैं तुम्हारे यहाँ चाय पीने जा पहुँची हूँ। जा तो पहुँची, किन्तु फिर इरादा बदल गया। तुमने आग्रह किया; मैंने इनकार कर

दिया। तुमने कसम खिलायी : मैं लाचार हो गयी। तुम चाय का प्याला मुझे देने लगे, तो मेरी दृष्टि तुम पर जा पड़ी। मैंने हाथ बढ़ाया ही था कि तुम्हारा हाथ काँप गया। प्याला तुम्हारे हाथ से छूट पड़ा। फर्श पर उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। मेरा पैर चहॅक गया सो अलग। साड़ी पर छींटे भी काफी पड़ गये।

आशा की इस बात पर ज्ञानू चुप रह गया। रह-रहकर एक अमांगलिक भाव उसकी आत्मा में हुकार करने लगा।

ज्ञानू स्वप्न की बातों पर विश्वास नहीं करता। वह मानता है कि स्वप्न तो मानस के ऊपर की क्षणस्थायी तरंगों के काल्पनिक छाया-चित्र होते हैं। जीवन के विस्तार और भविष्य के चिर व्यापक पथ में उनका महत्त्व क्या! तो भी एक आशंका से वह उन्मन हो उठा। वह सोचने लगा, क्या भावी का, वास्तव में, ऐसा ही कोई संकल्प है?—प्याला उसके हाथ से छूट पड़ेगा! फर्श पर उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे और आशा के चरण उससे जल उठेंगे!

तब उन्मन ज्ञानू के मुख पर जो श्यामली छाकर रह गयी, आशा उसे और अधिक देर तक देख न सकी—सहन न कर सकी। वह जानती है कि ज्ञानू किस प्रकृति का व्यक्ति है। उसे यह भी पता है कि जब कभी वह इस स्थिति में होता है, तब किसी प्रकार का कोई प्रश्न कर बैठना उसके लिए एक आघात के समान क्लेशकारक हो उठता है। तब अन्य किसी ओर —

जाकर उसने कहा—क्या तुम सोचते हो कि वे लोग तुम्हारे सम्बन्ध में इस तरह मौन ही रहेंगे ? मैंने अनुभव किया है कि तुम्हारे इस असहयोग ने उन लोगों में बड़ी उथल-पुथल पैदा कर दी है। मुझे स्पष्ट जान पड़ा है कि बाबू जी और नयीअम्मा में तुम्हारे सम्बन्ध को लेकर कुछ अन्तर पड़ रहा है। भले ही बाबू जी कभी उनसे कुछ न कहते हों ; किन्तु तुम्हें अपने निकट न पाकर भीतर-ही-भीतर वे कितने दुखी रहते हैं यह तो कभी-कभी झलक ही पड़ता है। इधर एक दिन खटपट भी हो गयी थी। बाबूजी ने साफ-साफ कह दिया था कि तेरे ही कारण नानू मुझे छोड़कर चला गया है। मैं जानता हूँ, वह कितना स्वाभिमानी है ! इसी बात पर नयीअम्मा और मुझ में खाँव-खाँव भी हो गयी। मैंने भी फिर ऐसी खरी-खरी सुनाई कि वे तिलमिला उठीं।

उत्साहित होकर नानू ने पूछा—क्या कहा था उन्होंने ?

"उन्होंने बाबू जी को समझा रक्खा है" आशा बोली—कि तुम उन सब लोगों से घृणा करते हो। उनका यह भी ख्याल है कि इसका एकमात्र कारण है तुम्हारा अधिकार। अगर तुम अकेले होते, तो आज इस भारी सम्पत्ति के स्वामी तुम स्वयं होते। किन्तु ऐसा न होने पर अलग तुम इसलिए हो गये हो, जिससे रायसाहब समाज की दृष्टि में गिर जायँ, उनकी बदनामी हो। लोग कहें कि देखो, उन्होंने नवपत्नी के प्रभाव में आकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को ठुकरा दिया।"

"तब तो अब वह समय आ गया है, जब मुझे उनका यह भ्रम निवारण कर देना चाहिए" ज्ञानू बोला।

आशा ने कहा—मैं भी ऐसा ही सोचती हूँ।

"नयी अम्मा ने अभी यह पत्र भिजवाया है" कहकर ज्ञानू ने जेब से वह पत्र निकालकर आशा के आगे फेंक दिया।

पत्र पढ़कर वापस करते हुए आशा ने कहा—चलो, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरा प्रयत्न सफल हुआ! अब तुमको आज उनसे जाकर जरूर मिलना चाहिए।

"तुम्हारे लिए मैंने कुछ सफेदा आम ले रक्खे थे। किन्तु तुम तो आयी नहीं, तब नौकर के हाथ मैंने वे सब, मन्दाकिनी को भेज दिये हैं।" खड़ा होकर ज्ञानू बोला।

"यह तुमने बहुत अच्छा किया।"

"अब मैं चलता हूँ।" कहता हुआ ज्ञानू उठकर चल दिया।

८

नल्ली भर आम उसी के लिए दद्दा ने भेजे हैं, यह जानकर फूली-फूली मन्दा झट से भीतर अम्मा के पास जाकर बोली—अम्मा, दद्दा ने मेरे लिए आम भेजे हैं। मुझे बुलाया भी है। मैं उनसे मिलने जाऊँगी।

रामप्यारी बच्चे को गोद में लिये खिला रही थी। म्होरी को

देकर बोली—हाँ, बड़ा भला है न तेरा दद्दा! बड़ी ददावाली बनी है! कितने दिन से आने के लिए कह रही हूँ, लेकिन उसके मिजाज ही नहीं ढूँढ़े मिलते!

"हूँ" कहती हुई कुछ उदास होकर मन्दा बोली—तुम झूठमूठ ऐसी बात सोचती हो। दद्दा मुझे बहुत चाहते हैं। उन्होंने मेरे लिए आम भेजे हैं।

"मैं इन सब बातों को ख़ूब समझती हूँ।" रायपत्नी ने कहा—बिना किसी ख़ास मतलब के वह ऐसा अपनत्व कभी दिखला नहीं सकता। लेकिन तुझे इन बातों से क्या?

"नहीं, मैं तो जाऊँगी।" कहती मचलती हुई मन्दा, फ़र्श पर पैर पटक-पटककर अपना विरोध प्रकट करने लगी।

तब भौंहें तरेरकर, अपरूप भंगिमा से, जोर से डाँटती हुई, रायपत्नी बोली—जिद करेगी तो मार खायगी। कहे देती हूँ। शाम को शायद वह यहाँ आयेगा। तभी ख़ूब मिल-भेंट लेना। दुलारे उसे लेने जायगा।

"शाम को मैं उन्हें लिवाने चली जाऊँगी। जरा देर की तो बात है।" मन्दा ने अन्तिम बार जोर लगाते हुए कहा।

महीनों से मन्दा ने ज्ञान को देखा नहीं था। अकसर वह उसकी याद कर लेती थी। कई बार उसकी इच्छा हुई, वह उसके पास जाकर उसे मनाकर ले आवे। किन्तु उसकी माँ कभी इस

बात पर सहमत नहीं हुई। आज जब ज्ञानू ने आम भेजे, आने के लिए कहलाया, तब मन्दाकिनी का निर्मल मानस प्राण-पण से उससे मिलने के लिए विकल हो उठा।

रायपत्नी बोली—मैं अभी दिवाकर को बुलाती हूँ। ज्यों उसने कान पकड़कर खींचना शुरू किया कि तेरी यह सारी जिद हवा हो जायगी।

किन्तु दिवाकर का नाम लेते ही मन्दा आवेश में आ गयी। बोली—वे मेरे बीच में पड़नेवाले होते कौन हैं? आवें तो; देखती हूँ, कैसे मेरा कान छू पाते हैं! हमारे ही मत्थे पर रहेंगे और हमारे ही कान खींचेंगे! मैं अभी बाबूजी से जाकर कहती हूँ कि अम्मा दिवाकर से मुझे पिटाने का जाल रच रही हैं।

रायपत्नी ने तुरन्त झपटकर मन्दाकिनी की कनपटी में एक चाँटा मारते हुए कहा—जा बाबू जी के पास, मेरा यह चाँटा भी लेती जा। कलमुही की जबान में लगाम ही नहीं रह गयी है। दिवाकर तेरा शत्रु है? दिवाकर, दिवाकर, जब देखो तब दिवाकर ही तेरी आँख का तिनका बना रहता है। तुझसे उमर में कितना बड़ा है! उसे सम्मा नहीं करते बनता! एक दफे समझाया, दो दफे समझाया, अपनी ही जिद—अपनी ही बात। आता है शाम को ज्ञानू। उसी के साथ जाके रह। देखती हूँ, क्या प्यार रखता है! चार आम क्या भेज दिये, दुनियाँ की सल्तनत दे डाली। मेरे यहाँ आमों की कोई कमी रहती है, जो

असली माँ होतीं, तो न तो ज्ञानू घर छोड़कर अन्यत्र रह सकता, न मन्दाकिनी के मुख पर यह प्रहार होता ! बड़े भाई के लिए उसकी छोटी बहिन क्या चीज होती है, आज यह बात रायपत्नी के ज्ञान से परे है। किन्तु उस दशा में मन्दाकिनी का यह भोला आग्रह, यह पावन स्नेह, उनके अभिमान की वस्तु होती। तब उसे पास खींचकर वे उसकी चुम्मी ले लेतीं, उनकी आँखें सजल हो जातीं। बिगड़ उठने की इसमें कोई बात ही न पैदा होती। अधिक सम्भव यही था कि वे कहतीं—अच्छा, तो मैं भी तेरे साथ उसे लेने चलूँगी। किन्तु स्थिति के जरा से अन्तर ने आज मन्दाकिनी की उज्ज्वल भाव-धारा को कैसा दुर्वह बना डाला है !

पास आकर महराजिन ने कहा—रोओ मत बेटी। अम्मा से जिद नहीं की जाती। उनकी बात मानकर ही चलना होता है। पढ़ी-लिखी, सयानी और समझदार होकर तुम इस तरह रोती हो ! छि सब लोग क्या कहेंगे, इसका भी कुछ खयाल करो बेटी ! चलो मुँह तो धो लो, झट से। मैंने हलुआ बनाया है। देखो, चखकर जरा बतलाओ तो, कैसा बना है। बाबूजी के पास अभी नहीं भेजा है। मैंने सोचा, पहले बेटी को चखा लूँ, तो भेजूँ। चलो, उठो तो।

नन्दा इसलिए नहीं रोयी कि माँ ने उसे मार दिया है और उसके मुँह पर उभरे उसके निशान जलन पैदा कर रहे हैं। उसे

इस बात का भी रंज नहीं है कि पीटी जाने की जो ग्लानि है, वह उसे, कुछ काल के लिए नतमुखी बनाये रक्खेगी। वह इसलिए भी नहीं रोयी कि अम्मा ने उसकी बात न मानकर उसे और जलील किया है। वरन् उसका रुदन तो माँ की कुटिलता के उस दम्भ पर है, जिसने उसे ज्ञानू के प्यार से इस तरह वंचित कर रक्खा है, जिसने अनुचित रूप से दिवाकर का सहारा लेकर उसके द्वारा उसे अपमानित कराने की चेष्टा की, और जिसने उसे बाबू तक के प्रति इतना अविनयशील, अनुत्तरदायी और निरंकुश बना डाला है।

महराजिन की प्यार-भरी शिक्षा से उसके अभिमान को थोड़ा जागरण मिला। वह आँसू पोंछती हुई उठी और उन्हीं रक्तवर्ण आँखों के साथ बाहरी दालान तक महराजिन के साथ चली आयी, किन्तु उसके बाद फिर वहाँ से मुड़कर रायसाहब के पास जा पहुँची।

रायसाहब उस समय अखबार पढ़ रहे थे। किन्तु अभी उसे पढ़ने कहाँ पाये थे। केवल पहला पृष्ठ खोलकर उसके हेडिंग्स पर अभी उन्होंने एक दृष्टि डाली ही थी कि तब तक आ पहुँची उनकी नवरत्ना। ज्ञानू की कोई चाल, आसो की बात, मन्दा की ज़िद, दिवाकर के प्रति उसका द्वेष और रग-रग में भर देने पर आत्ममान सिर पर उठा लेने का प्रयत्न—यही सब पूरी महाभारत

की कथा वता ही रही थी कि तब तक पहुँच गयी मन्दाकिनी।

रायपत्नी बोलीं—लो, भवानी आ भी पहुँची। अब उसी की बात कान लगाकर सुनो। मै जाती हूँ। मेरी बात सहज मे जब तुम्हारी समझ मे ही नहीं आती, तब मेरा कुछ भी कहना-न-कहना वरावर है।

रायपत्नी चली गयीं।

रायसाहव पहले आरामकुरसी के सिरहाने की ओर सिर टेके हुए थे। पत्नी की वात-भर सुन लेना चाहते थे। उसकी ओर दृष्टि डालना उन्हे इस समय स्वीकार न था। किन्तु जब मन्दा उनके निकट आकर खड़ी हो गई, तो वे उठकर बैठ गये और आँखो परसे चश्मा उतारकर बोले—क्या बात है मन्दा ?

वास्तव मे वे सब कुछ जानते हैं। कोई भी बात उनसे छिपी नहीं है। परिणाम मात्र सुनकर वे उद्‌गम तक की थाह ले लेते हैं। बोलते नहीं है। प्राय देखते और सुनते ही अधिक हैं। मन-ही-मन छानबीन करते रहते हैं। निश्चय कर डालने पर फिर उसको कार्य का रूप देने की चेष्टा तुरन्त नहीं करते। हाँ, आगे जो कभी उसी प्रसंग से कोई प्रकरण फिर से सामने आ जाता है, तो पहले वाले निश्चय को उसी समय व्यवस्था का रूप दे डालते है। इस प्रकार वे वर्तमान से तटस्थ रहते हैं, भविष्य से अपरिचित और अतीत से व्यवस्थित।

बोले—ज्ञानू पगला गया था। वह अलग जाकर रहने लगा। अब तुझे पागलपन सूझा है! लेकिन उसके तो माँ नहीं है, इसलिए वह पागल हुआ है। पर तेरे तो माँ है। तू क्यों पगली बनना चाहती है! तू चली जायगी, तो हम लोगों का क्या हाल होगा, कभी सोचा है?.. लड़ो तुम सब लोग, सहन करूँ मैं!—मेरे साथ तुम लोगों का यह अच्छा सलूक है!

इतना कहकर रायसाहब चुप हो गये। मन्दा भी चुपचाप जहाँ की तहाँ खड़ी रही। तब रायसाहब फिर बोले—अच्छा अगर आज शाम का दादा को लेने के लिए दुलारे के साथ तुझे जाने की इजाज़त मिल जाय, तब तो तू फिर हम लोगों को छोड़कर नहीं जायगी न?

अन्तिम वाक्य कहते हुए रायसाहब की आँखें चमकने लगीं। कण्ठ भी थोड़ा बदल ही गया।

पिता की यह बात सुनकर, उनके म्लान मुख और अश्रुपूर्ण नयनों को देखकर मन्दा चुप-चाप, मर्माहत सी होकर लौट ही रही थी कि आँखों को एक बार धोती से पोंछकर, चश्मा चढ़ाकर, अखबार देखने का उपक्रम करते हुए रायसाहब बोले—लेकिन मन्दाकिनी को तो शान्त स्वभाव का होना चाहिए, तू ऐसी तेजस्विनी कैसे बन गयी!

मन्दा जवाब न देकर उछलती हुई भाग खड़ी हुई। उस समय उसके पैर पृथ्वी पर न पड़कर जैसे घनश्यामा-परियों के पंखों पर पड़ रहे थे।

गात

गाड़ी मे मन्दा को भी आया देखकर ज्ञानू बहुत प्रसन्न हुआ। आते ही बोला—अरे, तू मुझे लेने आयी है! अच्छा! लेकिन पहले अपने घर चलेंगे, तब बॅगले पर चलना होगा। है न ठीक! मेरे यहाॅ आकर बाहर-ही-बाहर लौट जाना तो ठीक होगा नहीं। फिर तुझे तसवीरे भी निकालनी हैं।

दुलारे ने कार स्टार्ट कर दी।

भावातुर मन्दा बोली—कितने दिन से मैं आने के लिए अम्मा से कह रही थी : पर वे मेरी बात मानती ही नहीं थीं। आज भी आने के लिए मुझे झगड़ा करना पड़ा—यहाॅ तक कि मार भी खायी मैने। लेकिन तुमसे इतना भी न बना कि किसी दिन दस मिनट के लिए ही चले आते! दाबू से तुम्हारा झगड़ा हुआ था। लेकिन वही सब कुछ है। मै जैसे कोई चीज ही नहीं हूँ।

ज्ञानू ने मन्दा के सिर को सीने से लगा लिया। गद्गद् कण्ठ और सजल नयनो से, अधीर स्वर मे, उसने कहा—तू ठीक कहती है मन्दा। मै तेरे सामने जरूर अपराधी हूॅ। किन्तु तू नहीं जानती कि मनुष्य के लिए स्वाभिमान कितनी प्यारी चीज होती है।

बात के साथ-साथ ज्ञानू मन्दा के आँसू पोंछने लगा।

कुछ सम्हलकर मन्दा बोली—जानती क्यो नहीं हूॅ। मै क्या इतनी भोली हूॅ कि इतना भी न समझ सकूॅ!

थोड़ी देर दोनो चुप रहे। चलने से पहले रायपत्नी ने पोट-फुसलाकर मंदा से कहा था कि आज के इस झगड़े की बात अपने दद्दा से न कह आना। तब उत्तर मे मन्दा ने 'हाँ' या 'नहीं' न कहकर हँसते हुए केवल सिर हिला दिया था। किन्तु इस समय वह ज्ञानू से कोई बात छिपा न सकी। दुलारे के आम ले आने पर जो काण्ड उपस्थित हो गया था, उसकी सम्पूर्ण कथा मन्दा ने संक्षेप में उससे बतला दी।

कार ज्ञानू के मकान पर जाकर खड़ी हो गयी।

आज आशा मन्दाकिनी को पढ़ाने नहीं गयी थी। तबियत खराब हो जाने के कारण कल ही वह उससे कह आयी थी कि कल शायद मेरा आना न हो सकेगा। इस समय कार से उतरती हुई मन्दा बोली—आशा दीदी तो शायद यहीं पास ही कहीं रहती हैं।

ज्ञानू ने मकान के अन्दर प्रवेश करते हुए कहा—हाँ। लेकिन [illegible] है। किन्तु अगर तू उससे मिलना चाहती है, तो थोड़ी देर बाद मैं तुझे उससे मिला दूँगा।

"[illegible] बहुत [illegible] हूँ [illegible]।" मन्दा बोली। फिर कितने [illegible] उन्होंने तुम्हारे सम्बन्ध [illegible] अम्मा [illegible], [illegible] कि अम्मा कोई उत्तर [illegible]। [illegible] तुम उनको केवल जानते ही हो, या [illegible] तुम्हारी बातचीत भी हुई है?

कमरे में पहुँचकर ज्ञानू ने पुकारा—मटरू।

मटरू एक ओर सामने खड़ा ही था। बोला—सरकार।

ज्ञानू ने पाँच रुपये का एक नोट फेंककर कहा—बाजार से बढ़िया मिठाई और नमकीन तो ले आ झट से! मैं परचे पर सब चीजों के नाम लिखे देता हूँ।

मन्दा कमरे में सजी तस्वीरें देखने लगी।

ज्ञानू ने परचा लिखकर तुरन्त मटरू को दे दिया। मटरू चला गया। ज्ञानू कमरे से लगी कोठरी से मुलायम लैदर का एक अटैची-केस उठा लाया। फिर मन्दा से बोला—अपने पसन्द की तसवीरें अलग निकाल ले, तो फ्रेमिंग के लिए आज ही दे दूँ।

मन्दा तसवीरें चुनने लगी।

"कभी उनसे तुम्हारी बातचीत भी हुई है, या तुम उनको केवल जानते ही हो" मन्दा के इस प्रश्न के साथ ही ज्ञानू दूसरी ओर चला गया। उसके जी में आया, वह कह दे—हाँ मन्दा। मैंने एक-आध बार उसे देखा है। घर भी उसका मैं जानता हूँ। किन्तु वह कुछ कह न सका।

गुनिया आशा के घर जा रही थी। ज्ञानू के मकान से गुजरते हुए उसने देखा, मोटर खड़ी है। समझी, शायद ज्ञानू बाबू के पिता आये हों। अन्दर जाकर उसने जानकी से कहा—मम्मा, ज्ञानू बाबू के घर, जान पड़ता है, कोई आया है। उनके दरवाजे पर मोटर खड़ी है।

किन्तु फिर उससे चुप रहा नहीं गया। बोली—नन्दा में अभिमान की कोई बात मैंने नहीं पायी अम्मा।

आशा ने भी इसका समर्थन किया। बोली—हाँ, वह बड़ी अच्छी लड़की है। भगवान उसको अच्छा रक्खे।

गुनिया इसी समय लौट आकर बोली—डिराइवर से पूछा था मैंने। उसने बतलाया—मन्दाकिनी आयी है।

"लो, मैं कहती थी न, कि नन्दा आ सकती है।" आशा बोली—मेरा अन्दाज़ कभी गलत नहीं साबित हुआ।

लता उत्साहित होकर बोली—अम्मा, हो न आऊँ, ज़रा देर के लिए मैं ज्ञानू दद्दा के यहाँ। नन्दा से मिल आऊँ।

मुसकराती हुई जानकी ने कहा—ऐसी अधीर क्यों होती है! जब वह इधर आयी ही है, तब यहाँ भी ज़रूर आयेगी।

आशा ने भी कहा—हाँ लता, नन्दा अगर आयी है, तो चाहे पाँच ही मिनट को आये, यहाँ आयेगी ज़रूर। गुनिया बाज़ार से पाव-भर अच्छी-सी ताजी मिठाई तो लेती आ। और दो लेमनेट की दो बोतलें, दो पैसे की बरफ और दो पैसे के पान।

"[illegible]

जानकी बोली—एक ही दिन के परिचय में तेरा यह हाल है!

आशा खिल-खिलाकर हँस पड़ी। बोली—तुम तो इस तरह कह रही हो, जैसे सखी न होकर मन्दा उसकी कोई और हो!

लता और भी शरमा गई। बेल डालने का सामान समेटकर वह उस कमरे से उठकर दालान की ओर चली गई।

मटरू मिठाई ले आया था।

ज्ञानू बोला—ले, थोड़ा-सा खा तो ले मन्दा। लेकिन तू खायगी भला क्या, तो भी मुँह तो मीठा कर ही लेना चाहिये।

मन्दा आनन्द से मतवाली होकर अधिकार-गर्वित स्वर में बोली—वाह! खाऊँगी क्यों नहीं? और झपटकर वह तश्तरी में रक्खे चाँदी के वर्कदार कलाकन्द पर टूट पड़ी। एक कौर मुँह में रखकर बोली—बहुत बढ़िया बनी है। लेकिन तुम भी खाओ दद्दा। मुझी को खिलाते हो। तुम खुद भी तो खाओ कुछ!

ज़रा-सा मुसकराकर ज्ञानू बोला—यहाँ खा लूँगा, तो फिर तेरे यहाँ क्या खाऊँगा?

'अच्छा हाँ, तब ठीक है।' मन्दाकिनी बोली, किन्तु फिर तुरन्त चिन्तित हो उठी। सोचने लगी—अपना ही घर दद्दा के लिए बेगाना बन गया!

ज्ञानू ने मन्दाकिनी के लिए थोड़ी-सी मिठाई अलग छोड़कर

बाकी के लिए मटरू से कहा—सम्हालकर इसको कार पर रख आ।

मटरू उसे एक कपड़े में बाँधकर कार पर रखने चला गया।

मन्दाकिनी को बार-बार अम्मा के वे शब्द याद आ रहे थे—मैं इन सब बातों को खूब समझती हूँ। बिना किसी खास मतलब के वह कभी ऐसा अपनत्व दिखला ही नहीं सकता। आता तो है शाम को ज्ञानू, उसी के साथ जाके रह। देखती हूँ, क्या क्या के रखता है!

ज्ञानू ने जो थोड़ी-सी ही मिठाई उनके लिए अलग रक्खी थी, मन्दा उसको भी न खा सकी। तब उसने कहा—अरे! तू ने तो कुछ भी नहीं खाया। थोड़ी-सी तो और खा ले।

मन्दा बोली—बस, अब नहीं खा सकती।

वह पानी पीने लगी। ज्ञानू बोला—अब दो मिनट को आशा के घर भी हो आयें क्यों? तेरी तो वह गुरु-दीदी है।

मन्दा उठ खड़ी हुई। फिर चलते हुए कहने लगी—इतना अच्छा स्वभाव मैंने किसी में नहीं पाया। फिर दरवाजे पर आकर बोली—लेकिन एक बात मेरी समझ में नहीं आयी दद्दा। ब्याह करना उन्होंने क्यों नहीं पसन्द किया!

दोनों जानकी के घर की ओर बढ़ गये। मन्दा का प्रश्न ज्यों का त्यों लटका रह गया। अन्दर प्रवेश करते हुए ज्ञानू बोला—अम्मा।

जानकी झट से बाहर की ओर आकर बोली—आओ बेटा, चले आओ। (फिर उसके साथ मन्दा को देखकर) बीबी रानी भी आयी हैं। ले लता, तेरी सखी भी आ गयी। लता भी झट से नमस्ते करके उसके निकट आकर खड़ी हो गई।

जानकी उन लोगों को आशा के कमरे में ले गयी। पलँग के पास दो कुरसियाँ पड़ी हुई थीं। आशा बोली—आओ मन्दा, इधर निकल आओ।

मन्दा बैठ गयी। ज्ञानू खड़ा रहा।

उस ओर लक्ष करके आशा बोली—तुम तो बैठोगे नहीं। तुमको शायद खड़े रहने में बैठने की अपेक्षा अधिक आराम मिलता है।

ज्ञानू कुरसी पर बैठने लगा, तो आशा मुसकरा उठी। बोली—अरे, तुम तो सचमुच बैठ गये।

जानकी, लता और पीछे खड़ी गुनिया, सब-की-सब, हँस पड़ीं।

मन्दा बोली—आप को ज्वर आ गया। बोल भी कुछ बदला हुआ है।

"वैसे आराम करने का अवसर नहीं मिलता था।" आशा बोली—रात-दिन व्यस्त रहना पड़ता था। इसी लिए ज्वर ने कहा—चलो, ज़रा-सा इसे आराम तो दे आयें। इतनी ही कसर है कि हलुवा-पूरी खाने को नहीं मिलती। नहीं तो ...।

फिर सब-के-सब हँस पड़े।

गुनिया ने छोटी टेबिल लाकर लता के पास रख दी। फिर मिठाई, नमकीन और लैमनेड की बोतलें।

मन्दा बोली—अरे यह क्या! मैं तो अभी दद्दा के यहाँ ढेर-सी मिठाई खाके आ ही रही हूँ।

लता ने भोले आग्रह से कह दिया—वहाँ ढेर-सी मिठाई खायी थी। यहाँ—

बात पूरी करते हुए आशा ने कहा—यहाँ ढेर-सी खाने को मिल भी नहीं सकती। यहाँ तो थोड़ी-सी ही खिलायी जाती है। इसके साथ-ही-साथ एक बात यहाँ और होती है। जो कोई उस थोड़ी-सी मिठाई को भी खाने से इनकार करता है, गुनिया इधर-उधर देखकर, चुपचाप बाहरी किवाड़ बन्द कर आती है और तब फिर ज्योंही इस कमरे में आकर प्रवेश करती है, तो देखती क्या है कि वह (मिठाई) एक ही कौर में साफ़ हो गई है!

इस पर कमरे भर में अट्टहास गूंज उठा।

मन्दा बोली—तो फिर दद्दा, तुम भी थोड़ी सहायता करो, क्योंकि मामला संगीन नज़र आता है!

अबकी बार फिर हँसी हुई।

जानकी बोली—मुझे यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि

की शिक्षा को ही नहीं, उसके स्वभाव को भी बीबी रानी ने इतनी जल्दी अपना लिया है !

ज्ञानू ने एक तिकोना खाना शुरू कर दिया। लता को बोलने का अवसर ही नहीं मिलता था। इस समय संयोग पाकर वह बोली—ज्ञानू दद्दा घर से रूठकर इधर न आये होते, तो उन्हें लेने के बहाने इस कुटीर में इतनी जल्दी काहे को तुम्हारा शुभागमन होता।

आशा बोली—इस लता को भी मन्दा अब तुम अपने साथ लेती जाओ। जब से इसने तुम्हारा बँगला देख पाया है, तब से बराबर तुम्हारे यहाँ के वैभव-बड़प्पन की ही चर्चा किया करती है। चार दिन भी अगर साथ रहने का अवसर इसे मिल जायगा, तो इस बीच में एक-आध बार नयीअम्मा की तरेरी भौंहों का क्रीड़ा-कौतुक देखने का संयोग भी पा जायगी। और तब मैं इससे पूछूँगी कि बोल, अब क्या कहती है ?

इस बार हँसने के बजाय मन्दा गम्भीर हो गयी। किन्तु सत्य-गोपन की चेष्टा न करके उसने तुरन्त कह दिया—वाह ! इससे बढ़कर अच्छा मौका और क्या हो सकता है ? फिर क्षण भर ठहरकर उसने कहा—आशा दीदी तो विनोद से यह सब कह रही हैं, किन्तु मैं गम्भीरता-पूर्वक कहती हूँ। दीदी सम्भव है, और भी दो-एक दिन मेरे यहाँ न आ सकें। इस तरह तुम्हारे साथ मेरा पढ़ना भी ठीक तरह से चलता रहेगा।

जानकी ने कहा—मेरी ओर क्या देखती है ? इच्छा हो, तो चली जा।

इस समय ज्ञानबाबू चुप थे। वे सोच रहे थे—अगर बाबूजी ने, डबडबाई हुई आँखों से, मेरी ओर एक बार देख भी लिया, तो उस समय मैं क्या करूँगा !

इसी समय लता ने लैमनेड की बोतल खोलकर, बरफ पड़े शीशे के गिलास में, उसका शरबत पहले ज्ञानू को दिया, फिर मन्दा को। शरबत पीकर ज्ञानू उठ खड़ा हुआ ! बोला - अब चलेंगे।

आशा ने कहा—और ये पान रक्खे ही रहेंगे !

तरंगित ज्ञानू ने पान उठाते हुए आशा की ओर देखा। पर फिर वह कुछ सोचकर मन्दा की ओर देखने लगा।

आशा बोली—लता, जा कपड़े बदलकर जल्दी से तैयार तो हो आ।

लता के साथ जानकी भी चली गयी और अन्दर जाकर बोली—अच्छा है वहाँ पहुँचकर उन लोगों के साथ रहकर तेरी तबियत भी ताज़ी हो जायेगी

कौन सी साड़ी पहनूँ अम्मा ? लता बोल उठी—उस दिन वाली ही आज पहनकर जाऊँ

जानकी ने कहा — खादी की साड़ी क्यों नहीं पहन जाती ?

लता खुश हो गयी—बोली—हाँ बस, वही ठीक रहेगी।

गुनिया झट से सब समान समेटकर जब आशा के कमरे से बाहर हो गयी, तो ज्ञानू बोला—मन्दा अभी पूछ रही थी, क्यों दद्दा, इन आशा दीदी ने अभी तक ब्याह क्यों नहीं किया!

मन्दा लजा गई। लज्जित हास से बोली—किन्तु वह सवाल तो मैंने तुमसे किया था। मेरा यह मतलब तो था नहीं कि तुम उसे मेरे सामने ही दीदी के आगे इस तरह पेश कर दो!

मदा के भीतर का संकोच उसके मुख पर तो आ ही गया, वाणी में भी वह स्पष्ट हुए बिना नहीं रह सका, यह देखकर ज्ञानू पहले थोड़ा विरक्त हो उठा था। इसलिए फिर वह सम्हलकर कहने लगा—बात कहने का यह एक ढंग होता है मन्दा। इस तरह दोनों की रक्षा हो जाती है।

किन्तु आशा इस समय अपने आप को प्रच्छन्न नहीं रख सकी। एक बार उसके मन मे आया, वह कह दे—मन्दा तो पगली थी ही, देखती हूँ, तुम भी कम पागल नहीं हो। किन्तु यह न कहकर उसने कहा—विवाह जब माता-पिता की ओर से होता है मन्दा, तब कामनाओ में, कुछ दिनो के लिए, एक प्रकार वेग आ जाता है। ऐसा सौभाग्य मैं पा नहीं सकी। फिर विवाह की समस्या जब उसके पात्र के सम्मुख आ जाती है, तब वह उसकी उपयोगिता की समीक्षा करने लगता है। इस समय मेरी भी यही स्थिति है। लेकिन इस समय यहाँ एक बात मुझे भी जान लेने की इच्छा हो आयी है। और वह यह कि बाबूजी

तुम्हारे इन दद्दा के विवाह के सम्बन्ध में क्या इसी तरह मौन रहेंगे ?

मन्दा ने पहले विचार-लीन ज्ञानू की मुद्रा की ओर देखा, फिर आशा की ओर। क्षण भर तक जब कोई कुछ नहीं बोला, तब वह आपही बोल उठी—यह आपने अच्छी याद दिलाई। बाबू से मैं जरूर यह प्रश्न करूँगी।

लता इसी समय चलने को तैयार होकर आ खड़ी हुई। ज्ञानू और मन्दा, दोनों चलने लगे। दो बीड़े पान जो बच रहे थे, गुनिया उन्हें तश्तरी में छोड़ गयी थी। ज्ञानू की ओर देखकर जरा हँसती-सी आशा बोली—पान तो खा लो।

ज्ञानू ने शिष्टाचार के व्याज में कह दिया—धन्यवाद !

आशा तब उसकी ओर देखती रह गयी।

मन्दा और लता द्वार पर आकर आगे बढ़ने लगीं, तो ज्ञानू ने जानकी की ओर देखकर उन्नतमुख होकर कहा— अब तुम जाओ न अम्मा !

उत्फुल्ल उत्सुकता से जानकी बोली—जाती हूँ। पहले तुम लोगों को एक साथ कार पर जाते हुए देख लूँ।

उल्लसित विस्मय में ज्ञानू हँस पड़ा। बोला—अच्छा !

गुनिया जानकी के पीछे खड़ी थी। जब वे लोग कार में बैठ कर चल दिये, तो वह बोली—लता बेटी भी इन लोगों के साथ आज ऐसी मिल गयी है अम्मा कि बस ..।

जानकी ने कहा—लता का विवाह तो कहीं-न-कहीं हो ही जायगा। कठिनाई तो आशा के विवाह की है! कभी बात चलाती हूँ तो यही जवाब देती है, ऐसी जल्दी क्या है?

मुनिया चुप हो रही।

द्वार तक आते-आते जानकी ने ठण्डी साँस लेते हुए कहा—मेरी आशा के भाग्य में न जाने क्या बदा है!

आठ

लाल जिस समय उत्पन्न हुआ था, उस समय रायसाहब की अवस्था तीस वर्ष की थी। तब तक सात पुत्र वे खो चुके थे। उनकी पत्नी इतनी अधिक संतानों को प्राप्त कर-करके, थोड़े ही दिनों में, बराबर उनसे वंचित होते रहने के दारुण दुःख से इतनी उत्पीड़ित रहा करती थी कि रायसाहब से उनका आँसुओं-भरा मुख देखा नहीं जाता था। रोते-रोते उनकी आँखों की ज्योति क्षीण हो गयी थी। पलकों की बरौनियाँ गिरने लगी थीं। सिर में [illegible] प्रायः बना ही रहती थी। यह सब कुछ था। तो भी संसार [illegible] था। तब सन्तान-हीन हुए प्रायः वर्ष भी [illegible] था कि आशा और उत्साह के नवल वसंत में [illegible] लालसा फिर से लहलहा उठती थी।

तब [illegible] प्रातः-प्रभात में लाल ने उनके घर जन्म लिया था। जन्म के [illegible] शिशुओं की भाँति वह भी बहुत

अधिक दुर्बल था। प्रथम दर्शन में ही उन्होंने कह दिया था—यह तो धोखा देने आया है।—इसका भरोसा क्या! किन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-ही-वैसे वह उत्तरोत्तर हृष्ट-पुष्ट होने लगा। अन्य बच्चे प्रायः साल के भीतर ही प्रस्थान कर देते थे। किन्तु दो वर्ष बाद यह बालक उनके आँगन में हँसने-खेलने और उपद्रव मचाने लगा। और तब उनके दाम्पत्य जीवन को जिस सुख-संतोष का अनुभव हुआ, वह अनिर्वचनीय है।

आज अपने अतीत जीवन के इस दूरस्थित इतिहास के पृष्ठ उलटते हुए रायसाहब आगे बढ़ रहे थे।

उन दिनों ज्ञानू की माँ बहुत प्रसन्न रहा करती थीं। एक दिन की बात है, सावन का कोई सोमवार था शायद। कई दिनों से पानी नहीं बरसा था। धूप भी कुछ ज्यादा तेज थी। देवी-पूजन को वे गयी हुई थीं। लौटते-लौटते कुछ अधिक देर हो गयी। आने पर खाना खाकर, आराम करने के इरादे से जो लेट रहीं, तो फिर उठ नहीं सकीं। दिन-भर ज्वर बड़े ज़ोर से चढ़ा रहा। ज्ञानू को उन्होंने दूध नहीं पिलाया। बोलीं—कहीं नुकसान कर जाय, तो? तब उसे गाय का दूध दिया गया। उन्हें डाक्टर को दिखाया गया, उसने नुसखा दे दिया। दवा दी गयी। उससे दो-तीन दस्त तो हुए, किन्तु ज्वर कम नहीं हुआ। दस बजे रात से वे चेतना-हीन हो गयीं। फिर आँखें नहीं खोल सकीं और प्रातःकाल होते-होते इस संसार से कूच कर गयीं।

अब अन्त्येष्टि-संस्कार के बाद समस्या उपस्थित हुई, इस बच्चे का पालन-पोषण कैसे हो ? कुछ दिनों के लिए तो ननिहाल से एक पुत्रवती स्त्री आ गयी, ज्ञानू उसी का दूध पीता रहा। किन्तु यह प्रयोग भी कम भयावह नहीं सिद्ध हुआ। छै महीने भी नहीं बीतने पाये कि उनके साधना-निरत जीवन की भावधाराएँ नियमन से विरत होने लगीं। तब अपनी संस्कृति, अपने विश्वास और समाज का आतंक सामने आया। फलतः उस स्त्री को विदा कर दिया गया और इस बच्चे को चचेरे भाई के यहाँ भेज दिया गया। वे महाशय देहात में रहते थे। बच्चे की परवरिश के नाम पर जो दस रुपये मासिक उन्होंने लेने स्वीकार किये थे, वे भी जब उसे स्वस्थ न रख सके, तब वे किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। लाचार होकर उन्हें यह दूसरा विवाह करना पड़ा।

उस समय शर्म के मारे उन्होंने किसी भी रिश्तेदार को आमंत्रित नहीं किया था। पाणिग्रहण-संस्कार के अतिरिक्त विवाह के अन्य किसी विधान को भी उन्होंने नहीं माना था। कन्या जान बूझकर अठारह वर्ष की ही स्वीकार की थी। कई वर्ष तक अनेक सम्बन्धियों से पत्र-व्यवहार तक बन्द रहा था। आफिसवालों तक को किसी प्रकार का पता नहीं लगने दिया था। फिर पर भी जातीय पत्रों ने अपने कर्तव्य-पालन का परिचय दे ही डाला।

किन्तु यह सब तो बहिर्मुखी संघर्ष था। अन्तर्जगत की कौन जानता था ? ज्ञानू ने एक दिन ज़िद की, हम तो बिस्कुट

ही खायेंगे। किन्तु बिस्कुट उस समय घर में चुक गये थे। उन दिनों घर में एक नौकर सिर्फ गोपी था। सो भी काम से कहीं बाहर गया हुआ था। ज्ञानू बिना बिस्कुट के मचल गया। तब उसकी नयी माँ ने उसे ज़रा-सा मार दिया और ज्ञानू ने आसमान सिर पर उठा लिया। रोता हुआ वह उनके पास आया। बड़ा उपद्रव उठ खड़ा हुआ।

बेत टूट गया था। कई दिनों तक घर में इतनी अशान्ति रही कि सोना कठिन हो गया। तब नयी आवाज़ निकली। कहा गया—तू सिर्फ इस बच्चे के पालन-पोषण के लिए आयी है। अगर उसके खाने-पीने, खेलने-कूदने और उसे पोट-फुसलाकर रखने की व्यवस्था भी खुद पहले-से-पहले सतर्क रहकर, ठीक तरह से, नहीं रख सकती: तो फिर तू है किस मर्ज की दवा ?

नवपत्नी के पास इसका जवाब था। नये आदर्श उसके सामने थे। उसने भी कहा—मैं इस काम के लिए नहीं आयी। इसके लिए तो एक धाय रख लेना काफी था। हिन्दू समाज में लड़कियाँ पति को अपनी इच्छा से नहीं पातीं। जिस तरह एक पशु दूसरे व्यक्ति के हवाले कर दिया जाता है, उसी तरह वे उन्हें प्राप्त होती हैं।

उत्तर बहुत कठोर था। पुरातन आदर्श और संस्कारों के बिल्कुल प्रतिकूल। किन्तु उसमें सचाई थी। निदान, एक धाय भी, इस काम के लिए, उन्हें रखनी ही पड़ी।

अब एक ओर नवपत्नी की भरी जवानी थी, दूसरी ओर उनका यह निरन्तर चिन्तनशील जीवन। दोनों दिशाओं में कितना अन्तर था! दिन चलते गये और उन दिनों के साथ-साथ उत्तरोत्तर यही अनुभव होता गया कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है। अपने में वह सदा अपूर्ण रहा है और रहेगा। फलतः एक बार फिर उस लालसा-क्रान्त जीवन में नववसन्त का जागरण हुआ। पुराना मकान छोड़कर यह नया बँगला बनवाया गया। मन्दाकिनी ने जन्म लिया। सोचा, बस, अब इतना काफी है। लेकिन विधि का विधान, इधर फिर और एक नवीन आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। एक वह दिन था, जब एक पुत्र का भी मुख देखना दुर्लभ था—एक यह दिन है, जब बड़ा बच्चा रूठकर घर ही छोड़ बैठा है। एक दिन जिस पुत्र के पालन-पोषण के लिए साधनों का अभाव एक प्रश्न था, एक समस्या थी, उसके लिए—और केवल उसी के लिए—उसने यह दूसरा विवाह किया था। एक दिन यह है, जब उसका वही पुत्र कहता है—पुनर्विवाह तुम्हारी कामुकता थी!

रायसाहब ने आज दिन भर कमरे में टहल-टहलकर अपने इसी अतीत इतिहास का सिंहावलोकन किया। उस दिन जब आनू नाराज होकर इस बँगले से चला गया था, वे बहुत उत्तेजित थे। पुत्र का तीखा उत्तर वे सहन नहीं कर सके थे। तभी तो उन्होंने उसे डाँट दिया था। किन्तु फिर जब वह चला गया, तब

बराबर वे यही सोचते रहे कि जिस व्यक्ति के जीवन में इतनी दृढ़ता हो सकती है कि वह अपने एक सिद्धान्त पर अड़कर सारे वैभव का ही नहीं, अपने आत्मीय सम्बन्धों के मोह तक का त्याग कर दे, सत्य से दूर, न्याय से हीन, विवेक-बुद्धि से वंचित वह हो कहाँ तक सकता है !

इस सिलसिले में उन्हें नारी-जीवन की एक समस्या पर भी विचार करना पड़ा। उन्होंने सोचा, एक पुत्र के पालन-पोषण की आवश्यकता को लेकर मुझे पुनर्विवाह करना पड़ा है। किन्तु मेरी तो स्थिति ही दूसरी थी। मैं अगर तुल जाता, जैसे नत्रपत्रों के झगड़ा करने पर मुझे धाय रखनी पड़ी, वैसे ही पहले भी रख सकता था। उस दशा में पुनर्विवाह किये बिना भी मेरा काम चल सकता था। किन्तु मुख्य प्रश्न तो यह है कि यदि उस अवस्था से सुदूर पूर्व बिलकुल नवयौवन काल में मैं विधुर हो जाता तब ? तब भी बिना पुनर्विवाह किये क्या मैं रह सकता था ?

इस प्रश्न के उठते ही क्षण भर के लिए रायसाहब के होठों पर हास खेलने लगा। जानू को दूध पिलाने, उसे खिलाने और दुलरा-दुलराकर रखने के उद्देश्य से, उसके ननिहाल से, एक नवजात कन्या को गोद में लिये हुए वह जो एक नवयुवती यहाँ, एक रात के लिए आ गयी थी, मेरे उस अभिनव विधुर जीवन को, उसने मुझे कितना विचलित कर दिया था !

जब कि उस समय मेरी अवस्था काफी हो चुकी थी। अच्छा तो इस दशा में भी क्या मैं वासनाओं से मुक्ति पा सका था ?

इसी क्षण रायसाहब को ज्ञानू की उस दिन की विरक्त मुद्रा के साथ-साथ उसकी स्वरगम्भीर वाणी का स्मरण हो आया। उसने कहा था—तो आप यही न कहना चाहते हैं कि पुरुष आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त दूसरा विवाह कर सकता है। क्योंकि उसी की आवश्यकता समाज की चीज़ है। किन्तु स्त्री की आवश्यकता, उसका उत्पीड़न, उसकी मानसिक और दैहिक भूख समाज के लिए कोई चीज़ नहीं है !

दोपहर हो चुकी थी। रायसाहब के भोजन करने का समय हो गया था। कटोरी ने आकर कहा—बाबू जी, चलिये। माँ जी, इन्तज़ार कर रही हैं।

किन्तु रायसाहब की चेष्टा विवर्ण हो रही थी। आँखों में जैसे खून उतर आया था। भौंहें और होंठ फड़क रहे थे। कमरे में टहलते हुए, कभी-कभी पैर काँपने लगते थे। स्वामी दयानन्द तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की आत्माओं का प्रकाश उनके अन्तर्लोक में विद्युज्ज्योति की भाँति चमक उठता था। फिर सती प्रथा की याद आयी। लाल-लाल धू-धू करती हुई अग्नि-शिखाएँ और उनमें जलती हुई अनंग-लता-सी नारी का कमनीय कलेवर !

झर-झर-झर-झर ये आँसुओं के गान !

रायसाहब की आँखों से टप-टप शब्द करती आँसुओं की धार बह चली।

—ज्ञान मेरी ही आत्मा का प्रकाश है—मेरी ही पावन अनुभूतियों का समन्वय। उसने उचित ही किया है!

—मैंने उससे क्रोध में आकर कहा था—तुम मेरी पैदा की हुई सम्पत्ति के बल पर गुलछर्रे उड़ाते हो! अगर एक दिन खाने को न मिले, तो आटा-दाल का भाव मालूम हो जाय! आह! उसने इस अपमान का कैसा मर्म-भेदी उत्तर दिया है! उसने झट अस्सी रुपये मासिक की सर्विस करके दिखला दिया कि यह तुम्हारा भ्रम है! एक दिन था, जब उसकी ज़िद की रक्षा के लिए उसकी विमाता को मार खानी पड़ी थी! एक यह दिन है कि उसको अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए उस विमाता को उस प्रकार का दंड देनेवाले अपने पिता से भी विमुख होना पड़ा है!

कटोरी ने फिर कहा—बाबूजी चलिये। खाना खा लीजिये।

कमरे के अन्दर न जाकर कटोरी द्वार पर लगी हुई चिक के बाहर खड़ी थी। उन्हें बुलाने के लिए भीतर जो बढ़ने को हुई तो देखती क्या है कि रायसाहब की आँखों से आँसू गिर रहे हैं!

—उसने कभी मेरे आदेशों की अवमानना नहीं की। प्रारम्भ से ही वह आज्ञाकारी रहा है। हाँ, वह बी० ए० नहीं पास कर सका। क्या? इसी लिए न कि वह एक चिन्ताशील पिता की सन्तान है। धोखे की टट्टियों के पीछे वह क्यों चलता?

उसने विवाह करना स्वीकार नहीं किया; क्योंकि उसके मनका साथी उसे देख नहीं पड़ा। तात्पर्य यह कि वह तो सदा मेरी विचारधाराओं के आगे-आगे चलता आया है। सदा मैंने उसको समझने में भूल की। और आज, अभी तक, मैं उसके सम्बन्ध मे भूल ही करता आ रहा हूँ!

कमरे में सन्नाटा छाया हुआ है। खस की टट्टियों पर नौकर पानी छिड़क रहा है। पंखा मन्दतम गति से चल रहा है। कलेंडर का डेट-पैड मोटे-मोटे काले अक्षरों में सत्रह (अगस्त) बतला रहा है। रायसाहब ने डायरी उठा ली है। आज के लिए निश्चित पृष्ठ में वे लिख रहे हैं—

मैंने ज्ञानू को अनुचित दंड दिया है। विचार-जगत् में वह मुझसे कहीं आगे है। मैंने उसको समझने में भूल की है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि वश-भर मैं उसकी भावनाओं के संघर्ष में कभी नहीं पड़ूँगा। अपने इस अपराध से मुक्ति पाने के लिए मैं अगले तीन वर्ष तक बराबर आज के दिन निराहार रहूँगा।

इसी समय राय-पत्नी ने आकर कहा—कटोरी कितनी देर से खड़ी है, कितनी बार वह खाने के लिए कह चुकी: लेकिन तुम कुछ सुन ही नहीं रहे हो?

"सिर दर्द कर रहा है। मैं आज खाना नहीं खाऊँगा। शाम को शायद ज्ञानू आयेगा। उसको समझाबुझाकर रखना होगा। मुझसे नाराज़ होकर गया था। शायद मेरे आगे आने मे कुछ

हिचकिचाय, इसलिए पहले से कहे देता हूँ। अगर मेरी इस आज्ञा के पालन में ज़रा-सी भी टाल-मटोल हुई, तो मैं बहुत बुरी तरह से पेश आऊँगा। रोज़-रोज़ के झगड़े-बखेड़ों से मेरी तबियत ऊब उठी है। यों भी मैं थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरी ज़िन्दगी के अवशेष दिनों में कभी मेरे सामने कोई ऐसी बात पेश हो, जिसको देखकर मुझे तुमको किसी तरह का दंड देना पड़े। बस, इसके अलावा मुझे इस समय और कुछ नहीं कहना है। जवाब में मैं कोई बात सुनना नहीं चाहता। जाओ, खाना अभी तक न खाया हो, तो फौरन जाकर खाओ और अपना काम देखो।"

पति की लाल-लाल आँखें, पलकों के नीचे गालों तक फैले हुए सूखे गीले आँसुओं के चिन्ह, भरे हुए कण्ठ की भर्राती हुई आवाज़ और उनकी अनुशासन-गर्वित अन्तर्ध्वनि के आतंक से बात-की-बात में कम्पित होकर राय-पत्नी तुरन्त कमरे से बाहर चली गयी।

नौ

ज्ञानू सब से पहले नसीबन-अम्मा से ही मिला। जब तक कटोरी भीतर जाकर रायपत्नी से ज्ञानू के आने का संवाद कहे-कहे, तब तक वह खुद ही सामने आकर उनके चरण छूने लगा।

मन्दा बोली—अम्मा, लता को भी कुछ दिन साथ रखने के लिए ले आयी हूँ।

और लता ने इसी क्षण उनको प्रणाम किया।

राय-पत्नी ने उससे अनिच्छा-पूर्वक, अन्यमनस्क भाव से, कह दिया—अच्छा तो है। फिर उसकी ओर न देखकर वह ज्ञानू से बोली—मन्दा तेरे पीछे जान दिये देती थी। उनसे जाकर मेरी शिकायत की, इतना झगड़ा किया कि मैं तो हैरान हो उठी। उनकी तबियत भी आज कुछ गड़बड़ है। खाना नहीं खाया। तुमको मेरा न सही, पर इन लोगों का तो कुछ खयाल करना था। खैर, कुछ दिन तक अलग रहकर जी को तसल्ली दे आया, यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ।

ज्ञानू ने कोट के जेब से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालते हुए कहा—बचत का रुपया, मैंने सोचा नयी अम्मा के लिए लेता चलूँ!

नोट देते हुए वह उनकी ओर देखने भी लगा।

' बचा क्या पाया है," रायपत्नी बोली—सीधे तौर से यह क्यों नहीं कहता कि जो कुछ खर्च के लिए यहाँ से भेजा गया था, वही वापस कर रहा है। खैर। यह भी अच्छी बात है। इस तरह से रहोगे, तो कभी दुखी नहीं रह सकते। मैं रोज ही दो-चार बार सोच लेती थी—मेरा ज्ञानू और चाहे जिससे रूठ जाय, पर मुझसे वह कभी नाराज नहीं हो सकता। क्या करती, यहाँ से किसी तरह निकलना ही नहीं होता था। नहीं तो क्या

इतने दिन तू अलग रह पाता। आज जी नहीं माना, तब मन्दा से कहा अच्छा तू ही जा के लिवा ला। बहुत दिन हो गये। देखने को जी चाहता है। यो तुझे वहाँ तकलीफ भला क्या हो सकती थी, लेकिन माँ का जी तो नहीं मानता है न!"

ज्ञानू नीचा सिर किये हुए सब कुछ सुन रहा था। एक-एक शब्द मे कितना क्या है, क्या नहीं है, यह उसे स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रहा था। मूक भाव से वह सभी कुछ सुनता खड़ा रहा।

रायपत्नी बोलीं—जाओ। उनसे भी मिल आओ। मेरी तो यही राय है कि अलग रहना बेकार है। जो कोई भी सुनता है, उसी को दुख होता है। और, क्यों न हो दुख, दुख होने की बात भी तो है। जो आराम अपने घर में है, दूसरी जगह कैसे मिल सकता है! दिवाकर ने जाने कितनी बार पूछा —ज्ञानू को आना चाहिये, वह क्यो नहीं आता है? पर वह इसी डर से तुम्हे लिवाने नहीं गया कि कहीं ऐसा न हो कि कोई बात उठे और वह जो उनका पक्ष ले बैठे, तो उससे भी और एक नया झगड़ा उठ खड़ा हो। वह अभी तो यहीं कहीं था।

ज्ञानू तब नयीअम्मा के पास होकर ड्राइंग रूम की ओर चल दिया। किन्तु वहाँ पहुँचने पर उसने देखा, वहाँ दिवाकर अपने मित्रो के साथ बैठा बातचीत कर रहा है।

तब वह अन्यत्र न जाकर सीधा उसी कमरे की ओर चला गया।

दिवाकर एक गद्देदार कुरसी पर बैठा था। इधर-उधर सोफे पर बैठे हुए उसके दो मित्र उससे चुहल कर रहे थे। ज्ञानू ने देखा, उसके आने पर दिवाकर का चेहरा फक हो गया। किसी प्रकार की प्रसन्नता का भाव उसने प्रकट नहीं किया। हाँ, केवल एक रूढ़ि का पालन करते हुए उठकर उसका चरण-स्पर्श कर लिया।

तो भी ज्ञानू चुप नहीं रह सका। बोला—कहिए मामू साहब, स्टडी तो खूब चल रही है? और झट से कोने में खड़ी आलमारी की ओर बढ़ गया। देखा, काफी पुस्तकें गायब हैं—वेनिटी फेयर, अन्ना करेनेना और लॉ० मिजरेबिल और हाँ, आस्कर वाइल्ड और घर और बाहर और कुमुदिनी भी नहीं हैं। अच्छा, चरित्रहीन भी तो नहीं देख पड़ रहा है! और ···।

दिवाकर ने अध्ययन के सम्बन्ध में जवाब देने की तो कोई जरूरत नहीं समझी, पर जब देखा कि ज्ञानू अपनी पुस्तकों को थथोल-थथोलकर किसी निश्चय पर पहुँच रहा है और कुछ कहना ही चाहता है, तो वह अपने आप ही कहने लगा—एक आध कोई पुस्तक जान पड़ता है, दिदिया ने पढ़ने के लिए ली थी!

दिवाकर ने समझ रक्खा है कि ज्ञानू से इतना ही कहना काफी है। वह उनसे पूछने तो जायगा नहीं कि मेरी अमुक-अमुक पुस्तकें क्या हुईं? किन्तु ज्ञानू उसकी मुद्रा देखकर ही ताड़ गया

कि मामला क्या है। तब वह भौंहें तरेरकर उसकी ओर गुरु-गम्भीर दृष्टि से देखते हुए बोला—मैं अभी जाकर पूछता हूँ।

दिवाकर के मित्र एक दूसरे की ओर देखने लगे। कंचन ने कलाई-घड़ी देखते हुए कहा—ओ! इटिज सिक्स थर्टी, सुधीर।

सुधीर खड़ा होकर बोल उठा—अच्छा तो दिवाकर भाई, अब हम लोग चलते हैं।

चलते हुए कंचन ने कहा—आई होप टु सी यू ऐट जस्ट सेविन, दिवाकर।

और दिवाकर उधर से हटकर कंचन के पीछे-पीछे उस कमरे से बाहर चला आया। पोर्टिको के पास आकर बोला—मैं आने की पूरी चेष्टा करूँगा। लेकिन मुमकिन है, मुझे कुछ देर भी हो जाय। कुछ कारणों से ·।

"उन्हें मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।" कहकर सुधीर कंचन की मोटर साइकिल के पीछे बैठ गया और कंचन उसे स्टार्ट करके फट-फट करता हुआ चल दिया।

इसी समय दिवाकर के बगल से निकल पड़ी मन्दा, जिसके साथ लता भी थी। दिवाकर ने मन्दा के सिर पर ठोना मार दिया। बोला—उफ़! फिर वह अपनी अँगुली को झटके दे-देकर पूरे हाथ को इस तरह झुलाने लगा, मानो बिच्छू ने डंक मार दिया हो!

मुश्किल से लता अपनी हँसी रोक सकी। रूमाल उसने होठों से लगा लिया।

मन्दा बहुत गम्भीर हो रही थी। अतः उसी क्षण जब दिवाकर ने उसके सिर को अपने सीने से लगाकर उसकी ठोड़ी में चिकोटी लेते हुए पूछा—मुझे आम क्यों नहीं खिलाये? बता?—तो मन्दा ने उसका हाथ झटक दिया। अलग हटकर वह बोली—दूर से बात किया कीजिये। आग लगे ऐसे रिवाज की। यह भी कोई प्यार है कि आपने मेरे सिर में ठोना मार दिया! तिस पर आप कालेज में पढ़ते हैं! आम खाने को तो तैयार हो गये। कभी इतना भी नहीं हो सका कि बुआ से मिल तो आते! ... किसी तरह मैं उन्हें लिवा लाई हूँ। अब मैं उन्हें जाने देना नहीं चाहती। आप उनका कमरा खाली कर दीजिये। दूसरा, उस ओर का, मैंने खाली करने को गोपी से कह दिया है। उसी में आप अपना स्थान जमाइये।

मन्दा ये सारी बातें इतनी शीघ्रता और उत्तेजना से कह गयी कि दिवाकर बीच में टोककर उससे कुछ कह नहीं सका। आज सुबह से ही वह बात-बात पर बिगड़ी हुई है, केवल इतना उसने समझ रक्खा था। पर यह तो वह कभी सोच ही नहीं सकता था कि ऐसे मामले में उसका व्यवहार इतना शुष्क और कटु हो उठेगा। फिर अपनी बात समाप्त होते ही आने के बाद तत्काल ही वह चल भी दी।

दिवाकर इतना स्तब्ध हो गया कि उसकी हिम्मत नहीं पड़ी

कि वह उसकी बातों का कुछ भी उत्तर दे और अब तो उसका अवसर भी हाथ से चला जा रहा था। तब उसने तुरन्त पुकारा—मन्दाकिनी, ए मन्दाकिनी।

मन्दा तुरन्त लौट पड़ी।

रुष्ट दिवाकर बोला—मेरे लिए दूसरा कमरा खाली कराने की जरूरत नहीं है। मैं आज ही यहाँ से चला जाता हूँ।

मन्दा के साथ, इस बार भी, लता उसके सामने ही घूम पड़ी थी। उसकी गमन-छवि, सिर पर पड़ा हुआ सुन्दर साड़ी का किनारा, कानों के झूमर, पग-चालन में झलकता हुआ उसके अंग-अंग का अनूठा सौन्दर्य्य और एँड़ियों की लाली के बीच में पड़ी चप्पलों की सुशोभित काली पट्टी। प्रथम दर्शन में ही उसकी प्रत्येक चीज ने जैसे उनका मन मोह लिया। किन्तु, ठीक इसी क्षण मन्दा उसके सामने नागिन की भाँति फूत्कार कर रही है यह देखकर वह भीतर से तिलमिला उठा।

तत्काल मन्दाकिनी उसी प्रकार तीव्र वाणी में बोली—जैसी आपकी इच्छा! लेकिन इसके लिए मेरे ऊपर आपका कोई एहसान न होगा।

"तुम मेरा अपमान कर रही हो मन्दा! तुम्हें यह पता होना चाहिए कि मैं तुम्हारा मामा——।"

"मेरा मामा!" दिवाकर की बात काटती हुई मन्दा तुरन्त बोल उठी—इस सम्मान-लोलुप मामा ने यह नहीं देखा कि

दिवाकर है, यह सब सुनना लता को कुछ भी अच्छा नहीं लगा। उसे केवल एक बात अच्छी लगी थी और वह थी, उनका मन्दा के सिर से ठोना मारकर फिर अँगुली में बिच्छू के डंक मारने की पीड़ा का अभिनय। किन्तु वह भी इस समय उसके लिए विपत्ति-सा हो गया; क्योंकि उनकी बातें और उनका उसकी ओर घूरकर देखना और फिर उसके नाम की प्रशंसा करना उसे कुछ अवाञ्छनीय-सा प्रतीत हुआ।

मन्दा लता को अपनी हर एक चीज दिखलाना चाहती थी। वह उसे अपने पढ़ने के कमरे में ले गयी। वहाँ उसने अपनी संग्रह की हुई तसवीरें उसे दिखलायीं। कुछ तसवीरें उसे ज्ञानू ने दी थीं। अन्त में उसने उनको भी दिखलाया, फिर अपनी पुस्तकें दिखलायीं। कुछ कविता की पुस्तकें लता जो देखने लगी, तो उसने उनमें से एक नया काव्य-संग्रह उसको भेंट कर दिया। फिर वह उसे अपने रेडियोसेट के निकट ले गयी। स्टार्ट करके एक गाना भी उसे सुनाया। फिर घर का एक-एक कमरा उसने घूम-घूमकर उसे दिखलाया।

लता जिस वस्तु को सुन्दर देखती, उसकी प्रशंसा किये बिना न रहती। मन्दाकिनी फूली नहीं समाई। उसने कहा—हालाँकि विद्यालय की कई छात्राओं से मेरी बड़ी मित्रता है, किन्तु मालूम नहीं क्या बात है लता, तुम मुझे बहुत प्यारी लगती हो।

लता उसकी इस बात को सुनकर बहुत प्रभावित हुई। वह बोली—यह मेरा सौभाग्य है बहन।

इसी समय कटोरी वहाँ आ पहुँची। बोली—खाना तैयार है बीबी। चलो खा तो लो।

मन्दा बोली—दद्दा को बुलाओ पहले। मैं भी आती हूँ।

कटोरी चली गयी। पीछे से मन्दा भी चल दी। बोली—मैं पहले देख आऊँ, सब प्रबन्ध ठीक है कि नहीं, तब तुमको ले चलूँ। अभी दो मिनट में आती हूँ।

तब अकेली बैठी हुई लता के मन में आया—क्या कभी कोई दिन ऐसा होगा, जब मैं भी ऐसे वैभव की अधिकारिणी बनूँगी? ..नहीं हो सकता। बड़े भाग्य से यह सब मिलता है। ऐसा भाग्य मेरा है कहाँ!

दस

भानू रायपत्नी के पास खड़ा-खड़ा दिवाकर की शिकायत कर रहा था। वह कह रहा था—मेरी कई पुस्तकें उनमें से ऐसी हैं, जो मँगाने पर भी महीनों बाद आ सकेंगी। सम्भव है कोई पुस्तक न भी मिले। ये सब दिवाकर ने अपने यार-दोस्तों में बाँट दी हैं। पर मैंने जब उससे पूछा, तो उसने कह दिया कि दो-एक पुस्तकें मैंने दिदिया को पढ़ने को दी हैं, बस। अब तुम्हीं सोच लो अम्मा, कि यह कोई अच्छी बात है। मैं अगर कुछ दिनों

के लिए यहाँ से चला गया था, तो क्या उसको अनायास उसे यह लगाना चाहिए कि मैं अब आऊँगा ही नहीं। फिर मान लो, मैं न भी आऊँ, तो भी इन पुस्तकों की रक्षा तो उसे करनी ही चाहिए थी। अगर वे उसकी खरीदी हुई होतीं, तो वह उन्हें कभी इस तरह से न लुटा देता।

"उसने अगर अपने दोस्तों को दी ही होंगी" रायपत्नी बोलीं—तो इसमें चिन्ता करने की क्या बात है! वह उनसे वापस लेकर तुम्हें दे देगा।

"तुम नहीं जानती नयीअम्मा, तीन चीजें मांगे भी नहीं दी जातीं।" ज्ञानू ने कहा—एक तो लेखनी, दूसरी पुस्तक। और तीसरी स्त्री। ये तीनों-की-तीनों दूसरे के हाथ में पड़कर वापस नहीं होतीं। और अगर वापस हुईं भी तो नष्ट-भ्रष्ट दशा में मिलती हैं। यह नीति का वचन है। झूठ नहीं हो सकता।"

रायपत्नी हँस पड़ीं। बोली—अच्छा! तब जान पड़ता है, तेरा कहना ठीक ही है, क्योंकि और चीजों के बाबत तो मैं नहीं जानती, पर स्त्रियों के सम्बन्ध में तेरा कहना मुझे ठीक जान पड़ता है! अच्छा तो मैं दिवाकर को डाँट दूँगी। इस वक्त वह कहीं चला गया है। नहीं तो मैं अभी तुम्हारे सामने उससे पूछती कि यह क्या बात है! लेकिन अब तो तू यहीं रहेगा न? तेरे रहते इस तरह की बात फिर न हो पायेगी।

"और एक बात यह भी तो है ज्ञानू," कहती-कहती रायपत्नी

उसके बिलकुल निकट आकर बोली—दिवाकर तुम्हारे आगे अभी फिर भी अबोध ही है। समझ आते-आते आयेगी। यही देख, कि तू सदा से कितना क्रोधी और कैसा हठ-धर्मी रहा है: पर अब तुझे भी समझ आ रही है।

"नयी अम्मा कितनी दुनियादार है! भाई ने पुस्तकें गायब कर दी हैं, इस अपराध को कैसे ढँग के साथ हलका किये दे रही है'—ज्ञानू ने लक्ष किया। तब उसने भी ढँग बदलकर कहा—मुझे क्या करना है! मैं तो उन्हें पढ़ ही चुका था। यही ख्याल था कि मन्दा जब कालेज में पढ़ने जायगी, तब उसे भी इन पुस्तकों को पढ़ने की इच्छा होगी। सम्भव है, जरूरत भी पड़े। तब इन्हीं पुस्तकों के लिए तुम्हें सैकड़ों रुपये खर्च करने पड़ेंगे।

"अच्छा, यह बात है!" आश्चर्य के साथ ओजस्विनी होकर रायपत्नी ने कहा—सैकड़ों रुपये की पुस्तकें हैं वे! आने दे दिवाकर को, मैं कैसा झाड़ती हूँ उसे। वाह! ये अच्छे ढँग उसने सीखे हैं। इस तरह उसका मेरे यहाँ रहना नहीं हो सकता। पहले मैं समझी थी, यही दो-चार रुपये की पुस्तकें होंगी। पर मैं नहीं जानती थी कि इतना भारी नुकसान वह कर बैठा है! अच्छी बात है। मैं अब उसको जरूर टोकूँगी। ...हाँ, अपना सामान लाने के लिए तू सवेरे पुराने घर, जायगा न?

ज्ञानू सिर नीचा करके बोला—जाना ही पड़ेगा।

"हाँ, तुम्हारे चले जाने का उन्हें बड़ा दुःख हुआ। देखा नहीं,

कैसे दुर्बल हो गये हैं ! मिजाज भी अब कुछ चिड़चिड़ा हो गया है। मुझे तो उनसे बात करते डर-सा लगता है। यही जी में आता है कि जाने क्या कह बैठें ! ..अच्छा, जब तू उनसे मिलने गया तो उन्होंने क्या कहा ?" राय-पत्नी ने उत्सुकता से पूछा।

पिता की बात को लेकर ज्ञानू फिर उन्मन हो उठा। बोला—बातें तो उन्होंने ज्यादा नहीं की। पर मुझे यह विश्वास हो गया कि मेरे चले जाने से उनको बड़ी चोट लगी। मैं जो उनके चरण छूने लगा, तो वे मुझे आशीर्वाद देते-देते गद्-गद् हो उठे ! बोले—"तुम आ गये ! अच्छा किया। छोटी-सी जिन्दगी के कुछ थोड़े दिनों के लिए चाहे मुझसे झगड़ा करलो, चाहे मुझे छोड़कर चले ही जाओ। लेकिन जिस दिन तुमको पता चलेगा कि बाबू क्या चीज थे, उस दिन तुम अपने इस व्यवहार के लिए पछताओगे।" .. वे इतना ही कह सके नयीअम्मा। सम्भव है, और भी कुछ कहते, पर इतनी बात कहने में ही उनका कण्ठ भर आया, आगे शान्त हो गये। मैं थोड़ी देर और बैठा रहा। फिर अपने आप चला आया। मैं जब आने लगा, तो बोले—तो अब तो नहीं जाओगे न ? उनकी स्थिति देखकर दूसरी बात मैं सोच नहीं सका। मेरे मुँह से निकल गया—जैसी आप की आज्ञा।

रायपत्नी बोली—वही तो, वही तो, मैं तुमसे कह ही रही थी कि तेरे चले जाने से वे बहुत दुखी हुए।

इसी समय वहाँ दौड़ी-दौड़ी आ पहुँची मन्दा। बोली— बाद

दद्दा ! वाह ! मैं खाने के लिए वहाँ कब से तुम्हारा इन्तिजार कर रही थी, और तुम यहाँ खड़े-खड़े अम्मा से बातें कर रहे हो ! थाली परसी रखी है और खाना ठण्डा हो रहा है। चलो अम्मा, तुम भी चलो। हम सब लोग आज एक साथ खाने बैठेंगे, तब कितना मजा आयेगा !

राय-पत्नी बोलीं—तुम सब लोग खाओ। मैं पीछे खा लूँगी। जा ज्ञानू, तू भी जा। और बातें फिर पीछे होंगी।

ज्ञानू चला गया। बच्चे को गोद में लिये हुए राय-पत्नी भी तब रायसाहब की ओर चल दीं।

ग्यारह

दिवाकर जब सिनेमा देखने के लिए चलने लगा, तो भोजनालय में जाकर महराजिन से बोला—मैं दस बजे लौटूँगा। उस वक्त मेरे लिए दूध गरम मिलना चाहिए। खाना मैं बाहर खाऊँगा। इस वक्त न मेरे पास टाइम है, न तुमने अभी खाना ही तैयार कर पाया है।

महराजिन बोली—दूध गरम आपको मिल जायगा।

दिवाकर ने देखा, यद्यपि खाना आज खास तौर से [illegible] बनेगा लेकिन लाचारी है। तभी वह तेजी के साथ [illegible] चला गया। फिर दस बजे रात को चुपचाप आकर [illegible] उस समय दो बातें उसके लिए चिन्ता का विषय [illegible]

एक तो उसके साथ जानू का आगे का व्यवहार, दूसरी लता। वह जानता था कि अब जानू यहाँ रहेगा। उसके रहते हुए मुझे हमेशा नीचा देखना पड़ेगा। सम्भव है, एक-न-एक बखेड़ा रोज ही खड़ा रहे। आज ही यहाँ आते देर नहीं हुई कि मन्दा से कहा-सुनी हो गई। जानू ने दिदिया से पुस्तकों के गायब होने की बात कही ही होगी। देखें, अब उनसे कैसी निपटती है। उस समय कौन जानता था कि इतनी जल्दी ये महाशय आ जायँगे! उधर कंचन और सुधीर भी इन पुस्तकों पर ऐसे लपके कि मैं इनकार न कर सका। आज जो पूछा, तो कंचन बोला—"मैंने अभी उन्हें पढ़ नहीं पाया है। मेरे यहाँ से उन्हें केदार उठा ले गया है।" और सुधीर कहता है—"एक बार हाथ लगी हुई पुस्तक फिर मैं वापस नहीं किया करता।" भला अब मैं इन लोगों से क्या कहूँ? मुझसे यह तो कहा न जायगा कि फौरन उन्हें वापस कर दो।

दिवाकर आज लता की रूप-माधुरी पर मुग्ध है। उसके [illegible] ने उसका मन मोह लिया है। सिनेमा की अभिनेत्रियाँ उसके सामने उसका बिल्कुल कोई प्रभाव नहीं है। वह सोचने लगा [illegible] उस [illegible] के साथ मिलना [illegible] जाना [illegible] न [illegible] आज [illegible] आ [illegible] स्थापित करने की इच्छा संचित [illegible] रहता था।

[illegible] दिवाकर सो गया।

सवेरा हुआ। लेकिन वह सवेरा रविवार का था। फिर कल अन्य दिनों की अपेक्षा वह कुछ देर से भी सोया था। इसलिए उसे उठते और नित्यकर्म से निवृत्त होते बजे सात। उसी समय कटोरी चाय ले आयी। दिवाकर ने पहली ही घूँट कण्ठ-गत करते हुए पूछा—जानू बाबू क्या कर रहे हैं?

कटोरी बोली—गाड़ी पर पुराने घर गये हैं। अब यहीं रहेंगे। असबाब लाने को गये हैं।

"और मन्दा?"

"वे अपनी नयी सखी के साथ घूमने गयी हैं।"

"कितनी देर हुई?"

"अभी-अभी गयी हैं। बल्कि अभी फाटक के बाहर सड़क पर ही होंगी।"

दिवाकर ने चाय का प्याला झट से खाली कर दिया। फिर वह उठा और पार्क की ओर चल दिया। रास्ते में उसे याद हो आया, जब दिदिया ने पूछा कि जानू की कई किताबें तूने अपने मित्रों को दे डाली हैं, तो एक सेकण्ड का भी विलम्ब किये बिना उसने कैसे तपाक से उत्तर दिया था—भला ऐसा भी सम्भव हो सकता है दिदिया! इतना बेवकूफ नहीं हूँ, जो अपना हिता-हित भी न समझूँ। खुद ही इधर-उधर बाँट गये होंगे। तुमको उल्टा-सल्टा इसलिए सुझा दिया, जिससे एक नया बखेड़ा मेरे विरुद्ध खड़ा हो जाय। तुम उसकी बातों में न आना,

दिदिया। यह लो, जनेऊ हाथ में लेकर क़सम खाता हूँ, जो एक किताब भी उसकी मैंने कहीं किसी को अपने हाथ से दी हो। अब तो तुमको विश्वास हुआ कि नहीं? लेकिन गजब हो गया! जानू कितना चालाक निकला! और तो और, तुमको भी उसने आखिर अपनी बातों में फुसला ही लिया! अच्छा, तुमको उसकी इस बात पर पूरा विश्वास हो गया था दिदिया? सच कहना।

"विश्वास तो कुछ-कुछ हो गया था दिवू।" रायपत्नी कहने लगीं—बात यह है कि कुछ हो, जानू को मैंने कभी बात बनाते नहीं पाया। लेकिन अब तेरे ऐसा कहने से यही जान पड़ता है कि हो-न-हो, इस बीच कुछ गड़बड़ी हो गई है। किसी और ने ही अलमारी खोल डाली है।

इसपर मैंने कितनी स्वाभाविक भाषा में कहा था—

"हाँ, यह भी हो सकता है। यह तुम ठीक सोचती हो। ऐसा क्या कभी होता नहीं है? जो हो, यह निश्चित है कि उसकी पुस्तकें मैंने कतई नहीं छुई। मैं तो बल्कि यह भी नहीं जानता कि जानू की कितनी—कौन-कौन सी—पुस्तकें खोयी हैं।"

पार्क की ओर जाता हुआ दिवाकर अपनी इस सफलता पर अतिशय प्रसन्न हो रहा था। फेंसिंग की खिड़की पारकरके ज्यों ही उसके अन्दर पहुँचा, त्योंही देखता क्या है, लता की साड़ी गुलाब की टहनी के कांटे में उलझ गयी है और मन्दा कांटा निकालकर उसे सुलझा रही है।

दूर से ही तब दिवाकर बोला—अरे मन्दा, तुम लोग यहाँ चली आयी हो और वहाँ बाबूजी तुम्हें पुकार रहे हैं।

दिवाकर की बात सुनकर मन्दा कुछ अप्रतिभ हो गयी। बोली—इस समय तो वे प्रायः गंगा-स्नान करने जाते हैं। आज इतनी जल्दी कैसे आ गये?

दिवाकर तब तक मन्दा के निकट जा पहुंचा और बोला—रोज तो वे जाते नहीं। फिर कल उनकी तबियत खराब थी हीं। जान पड़ता है, इसीलिए आज नहीं गये।

मन्दा कहने जा रही थी कि मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं होता मामू। किन्तु पिता के प्रति इतनी अधिक ममता, ऐसी उग्र श्रद्धा उसमें है कि उनके सम्बन्ध की एकदम असत्य असम्भाव्य बात की भी अवमानना वह कर नहीं सकती। इसीलिए बार-बार उसके मन में आने लगा—सम्भव है, मामू ठीक ही कह रहे हों।

लता के हाथ में गुलाब का फूल देखकर दिवाकर आगे बढ़ गया और एक बार उसकी आँखों की ओर इकटक निहारता हुआ बोला—जरा मैं भी सूँघ देखूं। फिर फूल की ओर उसने हाथ बढ़ा भी दिया।

झिझकती शरमाती लता ने तुरन्त फूल दिवाकर के हाथ में दे दिया। इसी समय मन्दा बोली—आओ चलो चलें लता। बाबू मुझे याद कर रहे हैं।

लता मन्दा के पीछे-पीछे चल दी। उसी क्षण फूल सूँघता हुआ दिवाकर बोल उठा—अपना यह फूल तो लेती जाओ लता। लेकिन नहीं, मैं भूल कर रहा हूँ। जब तुमने ऐसे सुन्दर फूल को प्रसन्नता-पूर्वक मुझे भेंट किया है, तब मैं इसे लौटाऊँगा नहीं।

घृणा-की-घृणा से लता का मुख लाल हो गया। शरीर का रोआँ-रोआँ क्रोध से एक बार कम्पित हो उठा। फड़कते हुए ओठों से तुरन्त लौट पड़ी लता। बोली—देखिए मिस्टर दिवाकर, आप अपनी भाषा को ज़रा संयत रक्खा कीजिये। मैं मन्दा दीदी के साथ केवल दो-तीन दिन रहने आयी हूँ। मैं नहीं चाहती कि इस बीच आपसे मुझे कोई अप्रिय बात कहने का अवसर मिले। फिर रिश्ते में आप मेरे मामा लगते हैं।

"अरे, तुम तो बेकार बिगड़ खड़ी हुईं लता"। दिवाकर ने कहा—मैंने तुमसे ऐसी बात ही कौन-सी कही, जिससे तुमको मेरी भाषा को संयत करने का उपदेश देने की ज़रूरत आ पड़ी। तुम्हीं बतलाओ मन्दा बेटी, मैंने कौन-सी अशिष्ट बात लता से कही ?

मन्दा कुछ कहने ही वाली थी कि लता ने उसे मना करते हुए कहा—आप कालेज में पढ़ते हैं, यह मैं जानती हूँ। कल ही से मैं आपका रंग-ढंग देख रही हूँ। मुझे पता है कि आप बहस खूब करना जानते हैं। मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि आचार-धर्म के सम्बन्ध में आप लोगों का समुदाय कितना आगे बढ़ा हुआ है। लेकिन आप कान खोलकर सुन लीजिये कि यदि फिर

कभी आपने मेरा ऐसा अपमान किया तो मैं आपकी नाक बिल्कुल साफ कर दूँगी। मुझे इस बात की जरा भी परवा नहीं है कि उसके बाद क्या होगा। आपको शर्म नहीं आयी मन्दाकिनी से यह पूछते हुए कि मेरी शान के विरुद्ध आपने क्या कहा ? क्या मैं बतलाऊँ कि मेरे लौटते समय गुलाब के फूल की बात लेकर आपने किस नीचता का परिचय दिया है ? गनीमत समझें आप कि इन के मामा हो पड़े। नहीं तो अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए मुझे आपसे बहस करने की जरूरत नहीं पड़ती। खैर। वह तो बात ही नहीं रह गयी। पर अब भी अगर आपको अपना दोष स्पष्ट न जान पड़ता हो, तो मैं बड़े बाबू के सामने यह विषय रख दूँ। मेरा विश्वास है, उनका निर्णय आपके लिए अमान्य नहीं हो सकता।

दिवाकर किसी प्रकार हार मानने को तत्पर न होता, अब भी वह अपनी ज़िद पर टिका ही रहता। पर मुश्किल तो यह है कि वह इस मामले को और आगे बढ़ने देना नहीं चाहता। वह नहीं चाहता कि उसकी इस तरह की कोई शिकायत रायसाहब के सामने पेश हो। अतएव इस विवाद को यहीं दफ़ना देने के लिए वह विवश हो गया। बोला—सम्भव है मेरे शब्दों से कोई अपमानजनक अर्थ निकल सकता हो। पर मेरा ऐसा कोई बहुत ही अशिष्ट और अनुचित मन्तव्य नहीं था। तो भी यदि

मेरे शब्दों से आप को चोट पहुँची है, तो मैं उन्हें वापस लेता हुआ खेद प्रकट करता हूँ।

दिवाकर सचमुच अपराधी है, मन्दा इस बात को तो स्पष्ट रूप से नहीं समझ सकी। पर बात उसने ग़लत कही थी, यह वह अच्छी तरह अनुभव कर रही थी। लेकिन यह बात लता के लिए इतनी अपमानजनक जा ठहरेगी, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। अवस्था और शिक्षा में भी वह लता से छोटी थी। लता ने उस बात को बुरा माना था, यह देखकर वह खुद भी दिवाकर से कुछ कहने जा ही रही थी, पर जब विवाद, दोनों के बीच, आप-ही-आप शान्त हो गया, तो उसे फिर कोई बात कहने की वैसी आवश्यकता नहीं रह गई। इसके सिवा वह तो मनो-रंजन के लिए इधर आयी थी। पर उस समय इस अप्रिय प्रसंग ने उस स्थल का वातावरण ही अशान्त कर डाला था। इसलिए बँगले की ओर चलती मन्दा ने वस्तुस्थिति के अनुरूप थोड़ा हँसते-हँसते कहा—तुम कितने दुष्ट प्रकृति के हो, यह मैं जानती हूँ सम्मा। किन्तु एक बार तो शैतान भी छोड़ देता है। कल मुझको कष्ट दिया, आज मेरी इन लता दीदी को। अच्छा, अगर तुम ऐसी शैतानी छोड़ ही दो तो क्या तुम्हारा खाना न हजम हो ? खैर। गनीमत यही हुई कि तुम्हारी नाक बच गयी। मैं तो डर रही थी कि कहीं लता दीदी इसी वक्त चाकू न निकाल लें। क्यों, चाकू तो तुम हर वक्त अपने पास रखती हो न ?

लता एक ओर यह अनुभव कर रही थी कि उसके उत्तर के बाद मन्दा का यह परिहासपूर्ण कथन उचित नहीं हुआ। किन्तु दूसरी ओर वह यह भी सोचती थी कि कहने को तो मैंने इतना काफी कह दिया है कि वह अपना प्रभाव स्थिर रखने में पूर्ण समर्थ होगा। इसके सिवा ऐसी गम्भीर और उग्र बात-चीत के बाद आवश्यकता भी इस बात की है कि हम लोग अब समतल पर आ जायँ। अतएव वह भी तुरन्त मुसकरा उठी और बोली—तुमको जरूरत पड़ गई हो तो अभी निकाल दूँ।

हँसती हुई मन्दा कहने लगी—खैर, अब तो ऐसी जरूरत नहीं रह गयी। क्यों मामू?

पर दिवाकर सोच रहा था—अब इस समय मन्दा को यह बतला देना बेकार है कि उसको बड़े बाबू के याद करने की बात उसने यों ही कह दी थी। वास्तव में ऐसी कोई बात न थी।

— —

चार

अब भी ज्ञानस्वरूप मिल के अपने आफिस में काम करने जाता है। इस विषय में अपने पिता से परामर्श लेने वह न गया हो, यह बात नहीं है। पर उनके आगे उसने अपना जो दृष्टि-कोण रक्खा, तो रायसाहब फिर विपक्ष में स्थिर न रह सके।

उसने कहा—खाली बैठकर मुझसे रहा नहीं जायगा। और

जमींदारी के प्रबन्ध मे मैं हाथ डालना चाहता नहीं। मेरे विचार आपकी उस नीति से मिलते भी नहीं, जो आजकल आपके मुख़्तार और कारिन्दे व्यवहार मे लाते हैं। इसके सिवा अगर आप मेरी बातों से सहमत भी हो जायँ, तो भी मैं नहीं चाहता कि नयीअम्मा, छोटे भाई सत्यप्रकाश तथा मन्दाकिनी के आर्थिक लाभ में मैं कोई हस्तक्षेप करूँ। इन्हीं सब बातों पर विचार करके मैंने यह निश्चय किया है कि मुझे अपनी नौकरी का त्याग करना उचित नहीं है।

रायसाहब बार-बार मन-ही-मन यही सोचते रहे—ज्ञानू का नौकरी करना उसके गौरव के प्रति कितना अशोभन है! किन्तु अन्तत. वे ज्ञानू के ही निष्कर्ष पर आ पहुँचते थे। तब थोड़ी देर तक वे चुप ही बने रहे। ज्ञानू उनके बिल्कुल पास नतमुख होकर बैठा हुआ था। उसी की ओर देखकर फिर रायसाहब बोले—अच्छी बात है। तुमको जिसमें रुचि हो, आनन्द हो, तुम वही काम करो। मैं तुम्हारे विचारो से असहमत भले ही होऊँ, किन्तु यह कभी नहीं चाह सकता कि मेरे विचार तुम्हारे जीवन के विकास मे बाधक हो अथवा उनके द्वारा किसी प्रकार की भी असुविधा तुम्हारे आगे उपस्थित हो। मैं तो तुम्हे केवल प्रसन्न, सन्तुष्ट और सुखी देखना चाहता हूँ। बस, इसके आगे मुझे और कुछ न चाहिए। अच्छी बात है, तो अब तुम जा सकते हो।

तब पिता का आशीर्वाद लेकर ज्ञानू लौट आया था।

इस प्रकार वह नियम से बराबर अपने आफिस जाता है। हाँ, उसके आफिस जाने की रूप-रेखा में अब थोड़ा अन्तर पड़ गया है। पहले वह साइकिल पर जाता था अब घर की कार पर जाता है। मिल-मैनेजर तथा अन्य उच्च कर्मचारियों को भी अब पता चल गया है कि ज्ञानप्रकाश अपने घर का एक सम्पन्न व्यक्ति है। नौकरी तो वह शौकिया कर रहा है। पहले ज्ञानप्रकाश को ज़िम्मेदारी का काम सौंपने में मिल के अंग्रेज़ अधिकारी सोच-विचार में पड़ सकते थे। अब ऐसी बात नहीं रही है। अब तो वे उसके निम्न पदस्थ रहने पर भी अनुभव यही करते हैं कि वह हमारी ही तरह आदर का पात्र है। उसकी पद-वृद्धि के सम्बन्ध में भी मैनेजर प्रायः सोचने लगता है।

मिल से लौटकर पहले ज्ञान सीधा अपने रोटीगोदामवाले घर आता था। वहीं जानकी भी आ जाती थी। अब ऐसी बात नहीं रही थी। अब तो उसे सीधा अपने बँगले पर—नवाब गंज—जाना होता है। पहले जानकी के यहाँ, सहज स्वभावेन जाने पर आशा से भेट हो जाती थी। अब बँगले पर तभी उससे भेट होती है, जब वह मन्दा को पढ़ाने के लिए वहाँ पहुँचती है। पर वह भेट होती कितनी शुष्क है! मन के भीतर जिन भावों, विचारों और उक्तियों को उसने पिछले महीने भर से तह जमा रक्खी है, उनके खुलने तक की नौबत नहीं आती। ऐसी दशा में इस भेट को वास्तविक भेट

कैसे मान लिया जाय ! यह तो केवल क्षण भर का दृष्टि-विनिमय हुआ । उसी तरह, जैसे ज्ञानप्रकाश को कहीं रास्ता चलते हुए, किसी पार्क में, कोई प्रतिमा खड़ी देख पड़ जाय। माना कि प्रतिमा निर्जीव पदार्थ है । वह कुछ सुन नहीं सकती—कह नहीं सकती। पर उस स्थान पर आशा की स्थिति भी तो प्रतिमा-सी ही है। वह भी तो स्वतः न कुछ कह पाती है—न ज्ञानू को ही कुछ कहने का अवसर दे सकती है। भेंट होने पर मनोभावों के पारस्परिक आदान-प्रदान मे वह जो एक अभिनव माधुर्य्य की सृष्टि होती है, वह जो छवि-दर्शन के साथ-साथ भीतर-ही-भीतर प्राणों के आकर्षण-मिलन का एक स्वप्निल वातावरण बनने लगता है, इस भेंट में तो उसकी कल्पना तक नहीं है । कई दिन से ज्ञानू बराबर इस बात का अनुभव कर रहा था । इसीलिए आज शनिवार की उस सन्ध्या को वह जो घूमने निकला, तो जानकी के घर जा पहुँचा ।

मकान के भीतर प्रवेश करते ही दूर से ज्ञानप्रकाश ने सुना—अम्मा, ओ री अम्मा, देखो, ज्ञानू दद्दा आये हैं ।

जानकी झट आँगन मे आ गई । बोली—आओ बेटा, अच्छी तरह से तो रहे । खुश रहो । आशा से समाचार तो रोज मिल जाता था, लेकिन देखने की लालसा...। हाँ, यहीं डाल दो चारपाई गुनिया । लता दरी तो उठा ला बेटी । और हाँ, तकिया भी लेती आना ।

ज्ञानप्रकाश को प्रतीत होने लगा—अरे, कुछ कम दो महीने में ही वह इस घर के लिए ऐसा नया बन गया ! तब वह बोला—यह सब आडम्बर रहने दो अम्मा । मैं खाली चारपाई पर ही बैठूँगा । यानी मैं अगर किसी काम में लग जाऊँ और दस-पाँच दिन या महीने-दो-महीने, कारणवश आ न सकूँ, तो बाद में जब कभी आऊँ, तो मेहमान गिना जाऊँ ! यह भी कोई तुक है !

बात कहते-कहते ज्ञानू थोड़ा हँसने भी लगा । यद्यपि भीतर से उसका हृदय कचोट रहा था । बराबर वह यही अनुभव कर रहा था कि उससे भूल हो गई है । इतने दिन का विराम देना अच्छा नहीं हुआ ।

चारपाई बिछा दी गयी और ज्ञानप्रकाश उसपर बैठ भी गया । पास ही फर्श पर बोरा बिछाकर जानकी बैठ गयी । लता खम्भे की आड़ में बैठी एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगी । जानकी ने पूछा—कहो, फिर कोई खास बात तो नहीं हुई ।

पर ज्ञानू जब से आया है, बराबर चारों ओर आँखें घुमाकर किसी को देख रहा है, खोज रहा है । उसके मन में लगातार प्रश्न उठते हैं—वह आयी नहीं ?—देख नहीं पड़ी ? क्या घर में है नहीं ? बीमार तो नहीं हो गई ? लेकिन बीमार होती, तो ढूँढने पर मालूम न होता—मन्जू न बतला जाती !—क्यों, मन्जू क्यों बतला जाती ? उसका इस दिशा से परिचय ?—तो यह भी उससे भूल हो गयी कि उसने इधर कई दिनों में आशा की खोज-खबर नहीं

ली !—तब जान पड़ता है, वह बीमार ही हो गई है। अवश्य यही बात है। अजी, और कोई बात नहीं है। कुछ हो, मन्दा को चाहिए था कि वह मुझे सूचित तो कर देती कि गुरुजी बीमार है, अत. आजकल आ नहीं रही है।

ज्ञानप्रकाश के पास यद्यपि जानकी के इस प्रश्न के उत्तर में कहने को बहुत कुछ है; किन्तु उन बातों को उठाने का उसके भीतर कोई उत्साह नहीं रह गया है। तभी आज पहली बार वह सोचता है—अरे! आशा इस सीमा तक उसकी हो चुकी और उसे पता ही न चला! उसके बिना जैसे आज वह निर्जीव है, निष्प्राण है।

—किन्तु पागलचन्द, आशा को प्राण बनाओ, चाहे पखेरू; उसे अपनी जीवन-संगिनी बना भी सकोगे! स्वजातीय वैवाहिक साम्य भी उसका तुमसे है, या योंही बेपर की उड़ाये चले जाओगे!

फिर वह उथल-पुथल में पड़ गया। तब जानकी के प्रश्न के उत्तर में निरुत्साह से उसने कह दिया—हाँ, इधर ऐसी कोई खास बात नहीं हुई। साथ ही उसके जी में आया, वह पूछ क्यों न ले—आशा नहीं देख पड़ती? किन्तु फिर यही सोचकर वह चुप रह गया कि पूछना ही है, तो चलते समय पूछ लूँगा। —लेकिन वह तो एक उसी को जानता है, उसीसे मिलने आया है, जब उसे वहाँ नहीं देख पड़ती, तो उसका यहाँ और अधिक देर

बैठना व्यर्थ है, निरर्थक। उधर जानकी सोचने लगी, यह बात क्या है कि ज्ञानू तबियत से उत्तर नहीं देता, दृढ़ता से बात नहीं करता!—वह एकदम से चुप क्यों बैठा है!

इसी समय सीढ़ी से उतरकर कन्धे पर से साड़ी को ठीक ढँग से खींचती हुई आशा उसके सामने आ पहुँची और अधरों पर मन्द हास बिखेरती हुई बोली—जान पड़ता है इधर अक्सर, कुछ दिनों के अन्तर से, सूर्योदय बराबर पश्चिम में ही होने लगा है!

ज्ञानप्रकाश को पहले तो ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे रेल तो लड़ गई, लेकिन वह सही सलामत बच गया है। फिर कृत्रिम क्रोध से उसका मुख विकृत-सा हो उठा। बोला—भाड़-भट्ठी में जाय तुम्हारा सूर्य और उसका उदय, और तुमको क्या कहूँ! पहले यह बतलाओ, तुम अब तक रहीं कहाँ? सच कहता हूँ अम्मा, मैं बराबर यही सोचता था—आशा नहीं मिली, आयी नहीं वह। कहीं बीमार होकर तो नहीं पड़ी है। इतनी देर में अधमरा कर डाला मुझको। जाओ, अब भी अगर नींद पूरी न हुई हो, तो फिर सोओ जाकर। जाओ—जाओ न!

आशा कुछ बोली नहीं। केवल मुसकराकर रह गयी।

ज्ञानप्रकाश के जी में आया, वह कह डाले इस समय—हाँ, बस, ऐसी ही हँसमुख सदा देख पाया करूँ आशा। किन्तु इस समय यह बात वह कहता कैसे!

जानकी हँसने लगी। वह बोली—और मैं तुम्हारी शिकायत किससे करूँ, बोलो? मैंने जो एक बात पूछी तो तुमने 'हाँ' 'हूँ' के सिवा मुँह तक नहीं खोला। भला क्यों?

लता अवसर पाकर भीतर चली गयी। थोड़ी देर मे वह एक तश्तरी में अंगूर ले आयी और ज्ञानप्रकाश के आगे रख गयी। फिर उसने शीशे के गिलास में ठंडा जल भरकर तिपाई पर रख दिया।

आशा ने गुनिया से कुरसी मँगा ली थी। थोड़े फासले पर वह भी आ बैठी। रूमाल से मस्तक, आँखें और मुँह पोंछती हुई वह कहने लगी—सोने की चेष्टा तो बहुत की, एक झपकी भी जरूर लग गयी, पर ज्यादा देर तक, खूब गहरी नींद से, सो नहीं सकी। सिर का दर्द भी गया नहीं। इधर शाम भी हो गयी। तुम तो अभी आये हो। अंगूर खा डालो, फिर ऊपर चलो। वहीं बातें की जायँ। खाना भी यहीं खाना पड़ेगा। यद्यपि मेरी हिम्मत तो बनाने की है नहीं। लता बना देगी। क्यों?—उसी की ओर देखकर—तुम्हारे यहाँ से लौटने के बाद इसका खाने का टेस्ट बहुत बदल गया है। साधारण भोजन इसे पसन्द ही नहीं आता।

"यह तो बड़ी अच्छी बात है।" ज्ञानू ने अंगूर टूँगते हुए कहा।

"अच्छी बात है, आप जैसे लक्ष्मी-पुत्रों के लिए" आशा बोली—पर हम लोगों के लिए तो यह दुर्व्यसन है, बुरी आदत है।

स्थिति देखकर चलना होता है। रहने को झोपड़ी नहीं और स्वप्न देखना महलों का। मैं ऐसे आदर्श को पसन्द नहीं करती।

लता उठकर चल दी। जानकी बोली—अब मैं भी चलूँगी, मेरी मदद के बिना लता भला क्या कर लेगी।

"बैठो अम्मा। तुम भी बैठो लता। मैं ये अंगूर खतम कर लूँ, तो ऊपर चलकर बैठूँ। अब मेरे लिए खाना-वाना बनाने के झंझट में पड़ना बेकार है।"

"अच्छी बात है, मैं भी यही कहना चाहती थी" आशा बोली—अच्छा तो फिर ऊपर ही चलिए गरीब-परवर। लाइये, तश्तरी मुझे दे दीजिये, मैं लेती चलूँ।

यह कैसे हो सकता है?—कहकर खड़े होते-होते ज्ञानू ने कई अंगूर मुँह में एकसाथ भर लिये। लता और जानकी खड़ी हो गईं।

हँसती हुई आशा बोली—हिस्सा देते हुए ये कितने अधीर हो उठते हैं अम्मा, देखा तुमने।—कितने कृपण हैं!

सीढ़ी चढ़ता हुआ ज्ञानू बोला—क्या जानो तुम अंगूर खाना—चाय तक पीना अब तक तुमने सीखा नहीं!

बात अधूरी छोड़कर ज्ञानप्रकाश सीढ़ी-पर-सीढ़ी चढ़ता हुआ तिखण्डे की छत पर पड़े पलँग पर बैठकर हाँफने लगा। बोला—बुड्ढा हो गया हूँ तो अम्मा! देखो, हाँफी भी आने लगी! अब मेरे साथ ब्याह करना भला कौन पसन्द करेगा!

विहँसती आशा बोली—अपने आपको ठीक समझने की बुद्धि असल में आपको अब आ पायी है।

ज्ञानू हँसने लगा। बोला—यह तुमने एक ही कही।

इसी समय जानकी बोली—इतने दिनों तक हँसी-मसखरी की ये बातें सुनने के लिए मैं तो तरस गयी रे ज्ञानू।"

जानकी के इस वाक्य पर तुरन्त आशा ने ताली बजा दी। बोली—वाह रे ज्ञानू!

लता भी खिल-खिल करती हँस पड़ी।

तब ज्ञानप्रकाश ने अन्तिम अंगूर टूँगते हुए कह दिया—अरे, तुम भी हँसना जानती हो लता, तुम भी। अच्छा, तभी तुम्हारे खिलाये सारे-के-सारे अंगूर बिल्कुल खट्टे निकल गये। सच!

और इस वाक्य को लेकर ज्ञानू ने वैसा ही तुच्छता प्रदर्शक मुँह भी बना दिया।—यहाँ तक कि हाथों की अँगुलियों से संकेत भी वैसा ही कर दिया।

लता बोली—पर खट्टे अंगूर आप को पसन्द भी कुछ ज्यादा आते हैं। आशा ने उठकर बराण्डे में लाइट का स्विच दबा दिया। फिर एक कुरसी पर बैठकर उसने कहा—अभी तक यहाँ पर ज्ञान-ही-ज्ञान बिखर रहा था। प्रकाश नहीं था। लो, अब मैंने प्रकाश भी कर दिया।

रूमाल से हाथ-मुँह पोंछता ज्ञानू बोला—वाह, लता वाह, तुम्हारा यह उत्तर मुझे बहुत पसन्द आया। अच्छा लो, इसी बात

पर मैं तुमको यह पेन इनाम में देता हूँ। और उसने वह पेन बढ़ाकर लता के हाथ में दे दिया। पहले तो क्षण भर को सब लोग स्तम्भित रह गये। फिर पुलकित जानकी बोली—ले लता, ज्ञानू का शुभागमन आज तेरे लिए तो फल गया।

फाउन्टेनपेन को लता देखने लगी।

अब ज्ञानू उठकर खड़ा हो गया। बोला—अब मैं आज्ञा चाहता हूँ अम्मा।

"अरे वाह। इतनी जल्दी" जानकी बोली—न दो घण्टे, न चार। इतने दिनों बाद तो आना हुआ। खाना भी नहीं खाया!

"जाने दो अम्मा, जाने दो।" आशा बोली—आज अधिक आदर करोगी, तो फिर ये रोज आना शुरू कर देंगे। इससे यही अच्छा है कि जब कभी आवें, तो थोड़ी ही देर बैठें, थोड़ा-सा चना-चबेना पाकर ही संतोष कर लें और दे जायें जाने दो, और ज्यादा आशा मैं इनसे नहीं रखना चाहती!

"सचमुच यह बड़ी ढीठ हो गयी ज्ञानू।" जानकी बोली—तुम इसकी बातों का कुछ खयाल न करना।

ज्ञानू बोला—अरे, यह तुम सोचने क्या लगीं अम्मा! मनोविनोद में भी कोई बुरा मानता है!

लता ने तश्तरी में पान लाकर सामने धर दिये।

पान खाकर जब ज्ञानप्रकाश सीढ़ी से नीचे उतरने लगा, तो लता ने पूछा—अब कब आइयेगा?

लिए क्यों वह किसी से कुछ कहे। व्यर्थ में एक परेशानी कौन बढ़ाये। पर आज जब फिर उसे ज्वर आ गया, तो उसे कुछ ज्यादा बेचैनी जान पड़ी। चुपचाप वह पलँग पर पड़ी रही।

अक्टूबर का महीना चल रहा है। गरमी अब कम हो गई है। दूसरे खण्ड के कमरे में आशा का पलँग पड़ा है। मकान भर में यही कमरा सब से अच्छा है। हवादार तो है ही, सुहावना भी कम नहीं है। दीवालें हल्के आसमानी रंग से पुती हैं। उत्तर-दक्षिण तीन-तीन दरवाजे हैं—पूर्व में भी सड़क की ओर एक दरवाजा है, पर पश्चिम के दरवाजे से ही इस कमरे में प्रवेश करना होता है। पलँग पर मसहरी लगी है। नीचे रंगीन निवाड़ से वह बिना गया है। उस पर गुलगुला गद्दा बिछा है, जिस पर सफेद चद्दर बिछी हुई है। तकिये पतले और काफ़ी चौड़े हैं। दो तकियों को सिर के नीचे रक्खे हुए आशा चुपचाप लेटी हुई है। दाहिनी ओर एक छोटी गोल टेबिल है, जिस पर दवा की शीशी रक्खी हुई है। आँखों के ठीक सामने महात्मा गांधी का एक बड़ा चित्र टँगा हुआ है। बाईं ओर पैरों के निकट जो दरवाजा पड़ता है, वह बन्द है। सिर की ओर वाला खुला है। फिर उधर बिल्कुल दूसरी ओरवाला दरवाजा भी खुला है। शाम होने को है, इसलिए प्रकाश थोड़ा कम हो चला है। उसके कालेज की अध्यापिका कुमारी माधवी उसे देखने आयी थीं। अभी-अभी वे उठकर गयी हैं।

[illegible] भी [illegible]
दिया था — [illegible]
[illegible] जायगा। [illegible]
इसके बाद एक [illegible]
से देर तक [illegible] और पीठ की परीक्षा करते रहे। [illegible]
[illegible] साधारण [illegible] का प्रभाव
है। कोई फिकर की बात नहीं है। लेकिन अगर आराम नहीं हुआ, तो दवा बदलना होगा। पथ्य और परहेज़ तो जारी रखना है। मोसमी भी अच्छा है। देखो - अस्पताल में [illegible] था [illegible] के सामने एक बर्तन रखना, फिर उसका कफ राख मिलाकर ज़मीन में गाड़ देना। इधर-उधर मत फेंकना। मरीज़ के पास तुम खुद बैठना। कपड़े रोज़ बदलवाना। मरीज़ को मन खुश [illegible] रखना। उसको गुस्सा कभी मत होना चाहिए। बीमारी खतरनाक नहीं है। मगर होने का डर हो सकता है। अच्छा हो जायगा। फिकर मत करना। हम एक चार्ट भेजेगा, उसमें टेम्परेचर लिखते रहना होगा, उसे लता से लिखवा लेना। वह इंगलिश जानता है। थर्मामीटर तुम्हारा ठीक है।

लेकिन आशा ने माधवीजी से ये बातें बतलायी नहीं — डाक्टर जब चला गया, तो वह माँ से बोली — डाक्टर स्वभाव का जितना गम्भीर है, उतना ही पागल भी है। शक्की भी एक नंबर का है। समझता होगा, साफ़-साफ़ कहना ठीक न होगा, कौन

'जाने असर खराब पड़े। लेकिन बच्चू को अभी यह पता ही नहीं है कि बीमारी का उसे महज शक-ही-शक है। है-वै वह कतई नहीं। इस दवा ने अम्मा, बड़ा फायदा पहुँचाया। खाँसी परसों से कुछ कम है। और ज्वर जो आज मुझे आ गया, उसका कारण यह हुआ कि कल मैंने कुछ ज्यादा खाना खा लिया था।

उत्तर में जानकी कुछ बोली नहीं। उसका कलेजा धक-धक कर रहा था। लता बहुत कहने से स्कूल गई थी। जब से लौटकर आयी, बराबर उसके पास ही बैठी रही। अभी-अभी माँ को लेकर खाना बनाने गयी है। गुनिया के घर ननँद आ गयी है। इसलिए वह इस समय छुट्टी ले गयी है।

परसों जब सवेरे मन्दा के यहाँ से आया ताँगा वापस चला गया तो आशा के मन में आया था, सम्भव है—ज्ञानप्रकाश को भी मालूम हो जाय कि वह बीमार पड़ गयी है। सुनकर सम्भव है, वे तुरन्त उसे देखने आ पहुँचे। परन्तु वे न परसों आये—न कल। आज तो खैर अभी आने का वक्त है।

अभी वह चित्त लेटी हुई थी। अब करवट लेकर बाईं ओर लेट रही। दाहना पैर तकिये के ऊपर रख लिया। यों वह पेटीकोट के ऊपर धोती पहने रहती थी। अब पेटीकोट लेटे-लेटे कमर में गड़ने-सा लगा था। इसीलिए उसे उतार डाला है। धोती और ब्लाउज मात्र पहन रक्खा है। ऊपर से चादर डाल ली है। बार-बार उसका ध्यान सीढ़ी की पद-ध्वनि पर

जा खटकता है। ऐसा जान पड़ता है, कोई आया . यह आया! किन्तु एक घण्टा से भी अधिक हो गया, पर न कोई आया न गया। तब वह सोचने लगी—जान पड़ता है, आज भी वे आयेंगे नहीं।—अच्छा तो है, न आयें।

इसी समय आ पहुँची जानकी और लता। जानकी सिरहाने की ओर तिपाई पर जा बैठी। लता बगलवाले बरामदे में चली गयी और वहाँ पड़ी हुई चारपाई उठा लायी। दूसरी ओर चारपायी डालकर अभी वह उस पर बैठी ही थी कि आशा बोली—न लता, तुम यहाँ न सो सकोगी। मुझे यह बात पसन्द नहीं है कि घर का एक आदमी अगर दो-एक दिन को बीमार हो पड़ जाय, तो उसकी तीमारदारी में सारा-का-सारा कुटुम्ब बीमार पड़ने को [illegible] हो जाय। फिर तू इस साल टेस्ट में आयी है। पढ़ने की ओर भी तो अभी से ध्यान रखना है।

[illegible] भाव से जानकी ने कहा—हाँ, उधर ही पढ़ना-[illegible]।

[illegible] आशा उसके मुख की ओर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

लगी। जानकी ने कहा—देखो तो लता, कौन है। अच्छा रहने दो, मैं ही जाती हूँ।

आशा सोचने लगी—इस समय कौन आयेगा भला! सम्भव है, ज्ञानप्रकाश हो! लेकिन मैं नहीं सोचना चाहती कि वही हैं। तब कौन आ सकता है! अच्छा हाँ, मैंने गुनिया से कह दिया था, शान्ता से कह देना—याद किया है। सम्भव है, वही हो। लेकिन...। इसके सिवा करुणा भी हो सकती है। पर वह तो बहुत दूर सीसामऊ में रहती है। आयेगी भी, तो कालेज से लौटती हुई भले ही आये।

इसी क्षण सीढ़ी से एक साथ अनेक पदध्वनियाँ आने लगीं। जब वेसन निकट आ गया, तो सुनाई पड़ा, कोई कह रहा है—तो अम्मा, गुरु दीदी कब तक अच्छी होंगी?

बस तुरन्त पहले मन्दा और उसके बाद ज्ञानप्रकाश उसके सामने आ खड़ा हुआ। मन्दा ने पहले हाथ जोड़कर नमस्ते किया, फिर झट से उसके सिर पर हाथ रख दिया। बोली—सिर में दर्द भी तो है अम्मा। अच्छा, यू०-डी०-कोलोन लगाया जाय, तो कैसा हो दद्दा?

लता नीचे जाकर कुरसी लेने चली गयी। एक कुरसी वहाँ रक्खी भी हुई थी। जानकी बोली—डाक्टर गंगोली देख गये हैं। कहते थे—डर की अभी कोई बात नहीं है। तो भी खूब परहेज से रहना होगा। दवा मँगा ली है।

"डाक्टर गंगोली ! अच्छा !" कहते हुए ज्ञानू कुछ रुक गया। फिर बोला—मेरी राय है, मुखर्जी.. लेकिन नहीं, मैं पहले डाक्टर गंगोली से बातचीत कर लूँ।

पसीने से तर-बतर हो गया ज्ञानू। रुमाल से मुँह और गला पोंछने लगा। हैट उसने आशा के पलँग पर एक ओर रख दिया। लता कुरसी ले आयी, वो उस पर बैठ गया। मन्दा भी बैठ गयी। अब ज्ञानू ने आशा की कलाई थाम ली। कई मिनट तक वह नाड़ी देखता रहा। थर्मामीटर वह अपने साथ लाया था। बोला—ज़रा मुँह तो खोलना।

आशा को ज्ञानू के इस कथन पर हँसी आ गई। अस्वस्थ न होती तो वह कह देती—दया करो भगवन्, इस ग़रीब प्राणी पर! इस समय जो कुछ मैं चाहती हूँ, बस उतना ही दे दो—आशा का मुँह और ज्यादा न खुलाओ। पर इस समय परिस्थितिवश वह कुछ बोली नहीं। केवल मुसकरा-भर दी। फिर उसने मुँह खोलकर जिह्वा के तले थर्मामीटर का पतला श्वेत कोना दबा लिया।

मन्दा लता से कुछ पूछ रही थी। शायद उसने पूछा था—डाक्टर गंगोली ने कितना टेम्परेचर बतलाया था? लता ने कहा—टेम्परेचर उन्होंने लिया तो था, पर बतलाया नहीं।

मन्दा बोली—और तुमने पूछा भी नहीं!

लता लजा गयी। उसे बोध हुआ, उसने यह ग़लती की थी।

तब मन्दा ने आशा से भी यही प्रश्न करना चाहा। किन्तु थर्मामीटर लगाये रहने के कारण उसने फिर प्रश्न करके उत्तर देने में अड़चन उपस्थित करना उचित नहीं समझा।

ज्ञानप्रकाश ने इसी क्षण हाथ बढ़ाकर थर्मामीटर निकाल लिया और उसे बल्ब के निकट देखकर कहा—एक-सौ-एक है।

मन्दा बोल उठी—बुखार तो ऐसा कुछ अधिक नहीं है अम्मा, तब तुम इतनी उदास क्यों हो? मेरी अम्मा को—और मुझको भी—एक बार एक-सौ-चार डिग्री तक का बुखार आया था।

जानकी बोली—बेटी तुम अभी अजान हो। मैं तुमसे क्या कहूँ! वे अन्तर्यामी ही जानते हैं, मेरे ऊपर जो बीत रही है। मैं इससे बराबर कहती रहती थी। अब तुझे और अधिक पढ़ने की जरूरत ही क्या है? बेकार का एक मोह ही तो है डिग्री लेने का। रक्खा क्या है उसमें? फिर आराम से पढ़ना हो, तो भी कोई बात नहीं। दिन-रात पढ़ना—कालेज में पढ़ना और यहाँ भी पढ़ना। सबेरे तुम्हारे यहाँ पढ़ाने जाना। इसके सिवा घर-गृहस्थी का प्रबन्ध करना, यहाँ तक कि खाना बनाने तक में शामिल रहना। यह सब इसके बूते की बात है? लेकिन मेरी सुनता कौन है! अभागिन न होती मैं, तो इस गति को ही क्यों प्राप्त होती? लता के बापू की यह मरने के उमर थी।

फूट-फूटकर रो उठी जानकी। साथ ही लता भी रो पड़ी

मेरा जैसे सिहर उठा था। जीवन में क्या ऐसा सम्भव हो सकेगा कि तुमको मैं अपने में देख सकूँ!

"कुछ भी असम्भव नहीं है आशा" ज्ञानप्रकाश ने कह दिया—दो बातें निश्चित हैं। एक तो यह कि मैं विवाह करूँगा ही नहीं और दूसरी यह कि तुमको चारपाई फौरन छोड़ देनी होगी। यमराज भी स्वयं आयेंगे, तो उनसे मैं लड़ पड़ूँगा। कहूँगा—हम लोग एक हैं, अकेली आशा को तुम ले नहीं जा सकोगे। किसी तरह नहीं।

आशा की आँखों में आँसू भर आये। बिजली के प्रकाश में उन चमकते अश्रुओं को देखकर ज्ञानप्रकाश बोला—खबरदार, कभी रोना नहीं। लता बड़े कोमल स्वभाव की है। कभी जो तुम्हें रोते देखेगी, तो उसे कितना दु:ख होगा। अम्मा को भी मैं मना किये जाता हूँ। मेरे चारों ओर आँधियाँ चल रही हैं। मैंने सोचा था—विनयशीलता, उदारता और त्याग से मैं मनुष्य को जीत सकता हूँ। किन्तु मुझे अनुभव बिल्कुल इसके विपरीत हो रहे हैं। दिवाकर एक नम्बर का दुष्ट, बदमाश और गुण्डा है। नयीअम्मा को उसने मुट्ठी में कर रक्खा है। उसी के इशारे पर वे चलती हैं। उस दिन मैं जब रात को सिनेमा देखकर बँगले पर गया, पौने दस बचे थे। बाबू को छोड़कर सब लोग सो गये थे। दूसरे दिन मुझे मालूम हुआ, कई लोग कह रहे थे—कल रात ज्ञानू बाबू बारह बजे लौटे। कभी-कभी मैं सोचता हूँ, बँगले

पर जाकर मैंने गलती की। मुझे अपने इसी मकान में रहना चाहिये था। उस दशा में तुम बीमार भी शायद ही पड़ती। क्यों ?

आशा के अधरों पर फिर मन्द हास खेलने लगा। बोली—मेरे कहने ही से तो तुम वहाँ गये थे।

"सो तो ठीक है।" ज्ञानप्रकाश बोला—लेकिन अब तुम्हारे ही कारण मुझे फिर बँगला छोड़ना पड़ेगा। उन लोगों के भेदाभेद को मैं रोक नहीं सकता। नयीअम्मा के लिए मैं सदा दूसरा ही रहूँगा। उस दिन जब मैं गया था : पैर छूकर उन्हें दो सौ रुपये मैंने दिये थे। ये रुपये मैंने अपनी तनख्वाह से बचाये थे। पर उन्होंने कह डाला—ये तो वही रुपये हैं, जो यहाँ से भेजे गये थे ! उस दिन रात को खाना तो ठण्डा मुझे मिला ही था। दूध भी सब-का-सब लोगी पी गये। मेरे लिए बचाकर नहीं रक्खा गया। अंगूर सेर-डेढ़-सेर रोजाना आते हैं, पर मेरे ओठों ने छू नहीं जाते। मेरे पीछे जो कभी मन्दा कुछ कहने भी लगती है, तो उस पर डाँट पड़ती है। मामूली-सी खाने-पीने की चीज़ों में ऐसी क्षुद्रता का व्यवहार किया जाता है। हाँ, एक बात इधर जरूर नयी हुई है। बाबू पहले की अपेक्षा कुछ बदले हुए हैं। नित्य रात को सोने से पहले मुझे अपने पास बुलाते हैं और आफिस, घर-गृहस्थी और रियासत के सम्बन्ध में बातें पूछते और मेरा मतामत लेते हैं। मैं भी उन्हीं का मुख देखकर वहाँ पड़ा हुआ हूँ। इधर और भी एक मजे की बात एक दिन हो गयी। चाची-माता ने दे

कह बैठे—तेरे विवाह के लिए अब लोग मुझे बड़ा तंग कर रहे हैं ज्ञानू।

मै चुप लगा गया। तब उन्होंने कहा—पागलचन्द, शास्त्र का वचन है—प्राप्तेतु षोड़षे वर्षे पुत्रम् मित्र वदा चरेत्। समझते हो न ?

मैंने तब कह दिया—समझता हूँ, लेकिन समझना नहीं चाहता।

तब वे हँसने लगे। बोले—बडी मुश्किल तो यह है ज्ञानू कि इस घर मे बहू रहेगी कहाँ ? बँगला तो दूसरा बनवाना ही पड़ेगा।

इसी क्षण विहँसती आशा बोली—"इक बँगला बने न्यारा—रहे कुनबा जिसमें सारा।"

"लेकिन बँगला तो बना बनाया है" ज्ञानप्रकाश ने कहा।

"कहाँ, कौन-सा ?" आशा ने उत्सुकता मे पूछा।

"और यह क्या है ?" ज्ञानप्रकाश ने चट से अँगुली के संकेत मे उसी को बतलाकर कह दिया।

"धत" आशा बोली।

ज्ञानप्रकाश हँसने लगा।

इसी समय दौड़ी-दौड़ी मन्दा आ पहुँची। बोली—दद्दा ओ दद्दा, लो गरमागरम पोटैटो चॉप तो खाओ पहले। साग तैयार हो जाय, तो पूरियाँ बनाऊँ।

ज्ञानप्रकाश बोला—और तू नहीं खायगी ?

"राम कहो, मैं भला चूकनेवाली हूँ।" मन्दा बोली—पहले पहल चॉप तो मैंने ही उड़ाया। अब जाती हूँ। दीदी तुम भी खाओगी ?

ज्ञानप्रकाश बोला—पगली, ऐसे समय वह चॉप खायेगी !

मन्दा नीचे उतर गयी। पीछे से तश्तरी हाथ में लिये ज्ञान-प्रकाश भी नीचे चला गया। चलते समय कहता गया—मैं अभी अम्मा को यहाँ भेजता हूँ आशा।

उसके नीचे आते ही लता ने आँगन में कुरसी डाल दी और सामने छोटा टेबिल रख दिया।

पोटैटो-चॉप खाते हुए ज्ञानप्रकाश ने कहा—अम्मा, तुम ऊपर आशा के पास जाकर बैठो। मैं नीचे जानबूझकर चला आया हूँ। मरीज के सामने स्वादिष्ट पदार्थ नहीं खाने चाहिए।

जानकी तब तुरन्त ऊपर चली गयी।

ज्ञानप्रकाश बोला—लता ने उस दिन पूछा था—अब कब आइयेगा ? तब मैं यह नहीं जानती थी कि आशा को बीमार बनाकर वह मुझे चौथे दिन ही दावत देगी।

पूरी बेलती हुई लता बोली—ऐसी बात मत करो बहू। दीदी के चंगे होने में अगर मुझे मरना भी पड़े, तो मैं उसे हँसी-खुशी के साथ स्वीकार कर लूँगी।

लता के उत्तर से मन्दा अतिशय सन्तुष्ट होकर कहने लगी—लता ने आज भी कैसा सुन्दर उत्तर दिया बहू !

ज्ञानप्रकाश बोला—इस बात को इस तरह क्यों नहीं सोचती मन्दा, कि उसका उत्तर उसकी प्रतिष्ठा के सर्वथा अनुकूल है। लता का काम ही है समीर के झकोरे खाकर झूलने लगना।

मन्दा विस्मित हो उठी।

उत्फुल्ल लता बोली—दद्दा वास्तव में कवि हैं।

पानी पीकर ज्ञानप्रकाश उठ खड़ा हुआ। बोला—मैं ज़रा डॉक्टर गंगोली से मिल आऊँ। अभी आता हूँ।

ज्ञानप्रकाश जब बाहर जाने लगा, तो किवाड़ भेड़ता गया। आशा के कान नीचे ज्ञानप्रकाश की बातों पर ही लगे हुए थे। किवाड़ बन्द होने की आहट पाकर उसने जान लिया कि वे डाक्टर के यहाँ गये हैं। तभी उसका यह कथन सोचकर वह एक अकल्पित आनन्द में भर गयी—लेकिन बँगला तो बना बनाया है।

चार

डॉक्टर गंगोली से आशा के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जब सारी बातें ज्ञानप्रकाश ने पूछ लीं, तो उसके मानसलोक में एक बवण्डर उठ खड़ा हुआ। जान पड़ा, पैरों में आगे बढ़ने की शक्ति नहीं रह गयी है। शरीर का समस्त सत्व शुष्क पड़ गया है। सारा जगत अन्धकारमय हो उठा है। मकान ढह रहे हैं, उद्यान और

वाटिकाएँ उजड़ गयी हैं, नदियों का पानी सूख गया है। पथ में सर्वत्र छायातरु गिरे पड़े हैं और उनकी पत्तियाँ सूख रही हैं। पालतू पशुओं के खाने को घास और तृण तक उपलब्ध नहीं है। जिह्वा निकाल-निकालकर वे सब-के-सब मृत्यु के मुख में जा रहे हैं। हिंसक पशु बस्ती में आ-आकर अपने नखों और दाँतों से मानव-समाज का भक्षण कर रहे हैं। सारा संसार ही मानो एक महाश्मशान बनता जा रहा है।

ठंडी सड़क पर ज्ञानप्रकाश यही सब अमांगलिक कल्पनाएँ करता हुआ चल रहा था कि उसी क्षण उसे एक लकदक रेस्तोराँ देख पड़ा। किसी भी प्रकार का सोच-विचार किये बिना वह उसके अन्दर घुस गया। वहाँ अनेक गद्देदार कुरसियाँ पड़ी हुई थीं; पंखे चल रहे थे और इठलाती बलखाती हुई वेट्रेसेज इधर-से-उधर दौड़ रही थीं। ज्ञानप्रकाश के कुरसी पर बैठते-बैठते एक ऐसी ही वेट्रेस उसके समक्ष आकर उपस्थित हो गयी।

ज्ञानप्रकाश बोला—दो पेग जॉनीवॉकर।

दो मिनट बाद, शीशे के रंगीन गिलास में, बरफ के टुकड़ों से तर-बतर जैसेंट-संयुक्त वह पेय पदार्थ ज्ञानप्रकाश के सामने मूर्तिमान अमृत के रूप में उपस्थित हो गया।

एक क्षण के लिए उसने सोचा—यह विदूषक जैसा ज्ञान-प्रकाश ? किन्तु दूसरे ही क्षण उसके अन्तर से कोई कहने लगा—जन्म-जन्मान्तर की सारी साधना, समस्त बुद्धि-विवेक

और उन्नति का छायामय वितान केवल आत्मा की निश्चिन्तता, केवल मनोगत लालसा की पूर्ति के लिए है। इससे परे कहीं कुछ भी देख नहीं पड़ता—कौन जाने कुछ है भी कि नहीं।

दूसरे ही क्षण उसने गिलास मुँह में लगा लिया। गट्-गट्-गट्, बात-की-बात में उसने गिलास खाली कर दिया। पर्स निकालकर दाम चुकाये और सड़क पर आकर पान खाये। अब जब वह जानकी के घर की ओर चला, तो उसे प्रतीत हुआ उसके पैरों में गजराज का-सा बल है, शरीर में सिंह की-सी स्फूर्ति और आत्मा में उत्साह और नवल प्रेरणाओं का लहरें मारता हुआ समुद्र। यद्यपि उसके पैर डगमगा रहे थे, तो भी अपनी उस स्थिति का उसे पता नहीं था। ज्यों-त्यों करके वह जानकी के घर जा पहुँचा और धड़धड़ाता हुआ भीतर चला गया। आँगन में कुरसी-टेबिल उसी तरह पड़ी थी। वह झट कुरसी पर बैठ गया। लता ने खाना थाली में परोसकर उसके आगे टेबिल पर रख दिया। पूरी का पहला कौर वह तोड़ ही रहा था कि उसी क्षण जानकी नीचे आ गयी। बोली—लता, तू ऊपर जाकर बैठ, मैं जरा लालू से दो बात कर लूँ। यहाँ एक दूसरी कुरसी भी डाल दे। उस पर मन्दाकिनी बैठकर खायेगी। हम तुम फिर पीछे खायेंगे।

फिर [illegible] कहो लालू, डाक्टर ने क्या बतलाया?

डाक्टर साला और बतलायगा क्या? ज्ञानप्रकाश कहने लगा—मैंने जो पहले से सोच रक्खा था, वही तो है। बाजार में तुम मन

लोगों को परेशान कर डाला। मामूली-सा ब्रांकाइटिस है, ट्यूबरकुलोसिस कैसे हो सकता है? मैं कहता हूँ—रुपये में पाई भर भी चिन्ता की बात नहीं है। तीन दिन में यह मर्ज अच्छा हो जाता है।—सिर्फ तीन दिन में। बस जरा-सा परहेज रखना होगा। जहाँ बुखार उतरा और खाँसी कम हुई कि शरीर में ताकत-ही-ताकत दौड़ जायेगी, ऐसी दवा खिलाने का बन्दोबस्त कर आया हूँ। शर्त लगाकर मैं कह सकता हूँ कि चौथे दिन तुम उसको सवेरे मेरे साथ पार्क में घूमती हुई देखोगी, पार्क में!

जानकी मन खुश हो गयी। सारी शंका उसके मन से चली गयी। वह बोली—अगर मैंने जीवन-भर किसी प्राणी को दुःख न दिया हो, अगर जान बूझकर मैंने कोई भी पाप न किया हो अगर दुःख में, सुख में, मैं तुम्हें भूल न पाई होऊँ, तो हे भगवान, तुम लोकोपकारी मेरे इस लाल को सदा सुखी रखना किसी भी बात के लिए उसे दुखी मत करना।

आनन्दाश्रु उसकी आँखों में छलछला आये।

जानकी जब आशीर्वाद दे चुकी, तो झट से पानी के दो घूट पीकर लालमणि ने नीचे झुककर उसके चरणों की रज अपने माथे पर लगा ली। बोला—मेरा भाग्य बड़ा प्रबल है जो आज तुम्हारा जैसा आशीर्वचन मिला।

[illegible] ने [illegible]—अभी देर हो गयी [illegible], लालमणि ने [illegible]

देखकर कहा—कुछ अधिक देर नहीं हुई, सिर्फ साढ़े नौ बजा है। ...खूब खा लेना होगा मन्दा, कोर-कसर रखना ठीक नहीं है।

जानकी के मुसकराने का आभास पाते ही ज्ञानू फिर बोल उठा —लो, तुम हँसती हो। और अभी मैंने आधा भोजन भी नहीं किया। लाओ, थोड़ा-सा साग और तो दो इस कटोरी में। जब खाने को बैठ ही गया, तो फिर कुछ उठा क्यों रक्खा जाय!

जानकी मन-ही-मन सोचने लगी—आज इस ज्ञानू को हो क्या गया है। एकदम से बदला हुआ-सा देख पड़ता है। हो न हो, डॉक्टर गंगोली ने निश्चिन्त कर दिया होगा।—तभी खुशी के मारे इस तरह पागल-सा हो रहा है।

मन्दा बोली—मैं तो खा चुकी दद्दा। पानी पीकर वह ऊपर आशा के पास जा पहुँची।

आशा ने पूछा—खाना खा आयी मन्दा।

"हाँ, खा आयी दीदी।" मन्दा रूमाल से मुँह पोछती हुई कहने लगी।

"खाना कैसा बना था? पसन्द आया?"

जरा-सा हँसकर मन्दा ने कहा—कौन लता ने बनाया है, सारा नेतृत्व तो सच पूछो मेरा ही रहा है।

विस्मय से आशा ने कह दिया—अच्छा!

इसी समय ऊपर आ गया ज्ञानप्रकाश। बोला—पान तो झट से ला दे मन्दा। अम्मा नीचे लगा रही हैं।

फिर "अरे, मेरा रूमाल क्या डॉक्टर के यहाँ ही भूल गया ?" ज्ञानप्रकाश बोला—देखना, नीचे तो नहीं रह गया मन्दा।

मन्दा तब नीचे चली गई।

अब ज्ञानप्रकाश ने कहा—हाँ, अब ज़रा हाथ तो दिखलाना आशा।

मुँह बनाकर तब पुलकित आशा बोली—जाओ, बार-बार मुझे तंग मत करो।

तब हौले-हौले हँसता हुआ ज्ञानू बोला—

"नहीं मेरी आशा, मेरी कल्पना, मेरी साधना, मेरी आत्मा, मेरी रानी, ज़रा दिखला दो हाथ अपना।"

"जाओ, हटो तो यहाँ से। कहकर उसने ऊपर चादर तान ली। इसी समय आ पहुँची मन्दा। बोली—वहाँ तो रूमाल कहीं नहीं मिला दादा। जान पड़ता है—तुम वहीं भूल आये हो।

ज्ञानू बोला—यह रहा मेरे जेब में। हाँ, अच्छा यह थर्मा-मीटर तो ज़रा लगाना। मेरा ख्याल है आशा, अब तुम्हारा टेम्परेचर डाउन हुआ होगा। विस्मय से मन्दा बोली—इतनी जल्दी! अभी थोड़ी देर पहले तो देखा ही था।

"इससे क्या हुआ" कहते हुए वह घड़ी देखने लगा, बोला—दस बज रहा है। आठ बजे से लगाना था। दवा का असर भी तो कोई चीज़ है।

लता पान ले आयी। दो बीड़े मुँह में दबाकर ज्ञानू ने कहा—आज तुमको सोने में भी थोड़ा विलम्ब हो गया शायद।

थर्मामीटर लौटाते हुए आशा ने कहा—मुझे ऐसी नींद ही कहाँ आती है।

तापमान रोशनी के निकट देखते हुए ज्ञानू उछल पड़ा। बोला—हन्ड्रेड प्वाइन्ट फोर। गुडलक!

ज्ञानप्रकाश हैट सिर पर रखकर पैंट के जेब में हाथ डालता हुआ बोला—आलराइट, हम साहब लोग तुम्हारा विजिट रिटर्न करना माँगता है। (फिर घड़ी देखकर). आइ होप टु सी यू टुमारो। डार्लिंग मच बेटर माई आशा। गुडनाइट।

मन्दा और लता दोनों मुसकराने लगीं। आशा ने आँखों पर अखबार लगा लिया।

तब आगे-आगे चला ज्ञानू, फिर मन्दा और उसके पीछे लता।

ये लोग सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे और आशा गुनगुना रही थी एक गायन—सजनवाँ, जिया न मानत मोर।

—

[illegible]

रात के दस बज गये थे। फिर भी ज्ञानप्रकाश लता को [illegible] [illegible] [illegible] पढ़ [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। मन्दा ने साथ चलने और कुन्दीलों को देखने के लिए [illegible] थी, जब ज्ञानू के साथ [illegible] हुआ नहीं

अम्मा ने कहा था—जल्दी चली आना। वहाँ अधिक देर तक बैठकर गप्प लड़ाने की जरूरत नहीं है। नौ बजे से दिवाकर उनके पास जाकर ज्ञानप्रकाश के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके बाद कई बार वह उनके पास से उठकर इधर-उधर चक्कर लगाता रहा। अन्त में फिर वह उन्हीं के पास जा पहुँचा। कलाई में बँधी घड़ी दिखलाकर वह कहने लगा—अब तो देखा कि नहीं? या अब भी नहीं देखा? आखिर इतनी रात तक नन्दा को लेकर बाबूसाहब कहाँ घूम रहे हैं! कह गये थे कि आशा के यहाँ जा रहे हैं—वह सख्त बीमार हो गयी है। किन्तु मुझे अभी-अभी एक मित्र बतला गये हैं कि उनको तो मैंने एक रेस्तोराँ में शराब पीते देखा है! मैं कसम खाकर कहता हूँ कि इसमें अगर मैं जरा भी झूठ बोलता हुआ होऊँ, तो भगवान मुझे इसकी सजा दें।

नयी अम्मा दिवाकर की इस बात को सुनकर स्तम्भित हो उठीं। बोलीं—तू कहता क्या है रे दिवाकर! ज्ञान और सब कुछ कर सकता है, पर इतना पतित वह कभी नहीं हो सकता।

"ले बस, यहीं तुम भूल कर रही हो जिज्जी। कुसंगति में पड़कर आदमी क्या नहीं कर सकता? शराब चीज क्या है?" मेरे साथ पढ़ते [illegible] एक लड़का गोपीनाथ पढ़ता था। [illegible] चोरी करने के [illegible]।

"तो नन्दा को भी साथ ले गया होगा।"

"नहीं [illegible] से [illegible] नहीं [illegible]—

वह किसी दूसरी जगह बैठी होगी। उनके साथ तो थी नहीं। लेकिन मैं पूछता हूँ कि मान लो, मन्दा को उसने कहीं बैठाल ही दिया हो, तो उसका किसी ऐसी-वैसी जगह बैठाल देना भी तो खतरे से खाली नहीं है। फिर आजकल जमाना कैसा खराब लग रहा है! और सौ बात की एक बात तो यह है कि जो व्यक्ति शराब जैसी चीज पीने पर उतर आया—उससे बच क्या रहा?

जलती-सुलगती हुई नयीअम्मा बोलीं—आने दो आज उसको। अभी जो घर से निकाल बाहर न करूँ, तो मुझको जिज्जी न कहना।

नयीअम्मा अब मन-ही-मन सोच रही थीं—मैं उनसे बराबर कहती आ रही हूँ कि ज्ञानू अब अपने कहे-कब्जे का नहीं रह गया। डर तो उसे किसी का छू तक नहीं गया है। फिर सोचती थीं—स्वभाव का वह जन्म से ही ज़िद्दी है। लेकिन इस तरह की कोई बात तो उसमें अभी तक थी नहीं। उसकी देख-रेख हो भी कैसे सकती है! बाइस चौबिस वर्ष का हो गया है। ऐसे जवान लड़के के पीछे हर घड़ी तो लगकर रहा नहीं जा सकता। लेकिन मैं यह न जानती थी कि इतनी रात तक वह जो घूमकर लौटता है उसका कारण कुछ और है! पर मुझे सब से ज्यादा डर मन्दा का है। अगर कोई वैसी बात हो गयी, तो मैं तो मुँह दिखलाने योग्य न रहूँगी। यों वह अभी बच्चा है, लेकिन फिर भी है तो कच्चे

घड़े के समान। जैसा ढालो वैसा ही ढल जाता है। ..भले-बुरे का ज्ञान इस उमर में नहीं होता!

इसी क्षण दिवाकर कहने लगा—लो, साढ़े दस बज गये!

रायपत्नी बरामदे में खड़ी हुई फाटक की ओर ही देख रही थीं। दिवाकर ने जो घड़ी दिखलाकर समय बतलाया तो उत्तेजित होकर कहने लगीं—मर भी तो नहीं जाता यह जानू, जो मुझे दो घड़ी चैन तो मिले।—जब देखो तब मुझे जलाया ही करता है!

बस, इसी समय जानू ने बँगले के भीतर प्रवेश करते हुए सुना, नयीअम्मा कह रही हैं—जलाया ही करता है। तब जानू ने एक बार मन्ना की ओर देखकर नीचे के होंठ आगे को निकालते, मानो मुँह बिदोरते हुए, कह दिया—उँह, यह तो बहुत साधारण बात है।

दिवाकर बहन के पास से हटकर दूसरी ओर चला गया।

रायपत्नी ने सामने देखते ही उबलते हुए मन्ना से पूछा—सुबह ने तो तू कह गयी थी कि मैं सुरूदीदी को देखने जाती हूँ। सच-सच बता कहाँ गयी थी? और झपटकर उन्होंने मन्ना की बाँह थाम ली।

मन्ना पहले तो हक्की-बक्की रह गयी। तत्काल वह कुछ भी सोच न सकी कि आखिर मामला क्या है? एक दृष्टि से उसने

ज्ञानू की ओर देखा। और उसका फल यह हुआ कि नयीअम्मा ने समझ लिया, जरूर कुछ दाल में काला है। अतएव उन्होंने तड़ाक से उसके एक तमाचा जमा दिया। फिर तड़पते हुए कहा —बतलाती क्यों नहीं? ऐं!—मैं पूछती हूँ, आखिर तू गयी कहाँ थी?

मन्दा रो पड़ी। फक्-से उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। कुछ भी न कह सकी वह।

दिवाकर दौड़ पड़ा इसी क्षण। बोला, मन्दा को मारो मत जिज्जी।

तब तो नयीअम्मा क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति फूत्कारकर, दाँत पीसती हुई आगे बढ़कर, उसके गले पर हाथ ले जाकर कहने लगी—मैं तेरा गला घोट दूँगी अभी, नहीं तो सच-सच बतला, तू गयी कहाँ थी।

सिसकती हुई मन्दा बोली—गुरुदीदी के यहाँ ही तो गयी थी। और तो कहीं नहीं गयी। दद्दा अलबत्ता डॉक्टर गंगोली के यहाँ गये थे। मैं तब भी गुरुदीदी के ही यहाँ थी।

"तो यही बात तू ने पहले ही क्यों नहीं कह दी?" कहकर नयीअम्मा ने अब ज्ञानप्रकाश की ओर दृष्टि डालते हुए कहा—बस, बहुत हो चुका ज्ञानू, आज से अब तुम मन्दा को अपने साथ कभी मत ले जाना। मैं तो समझती थी, अपने बाप की तरह तुम, और नहीं तो, अपने आचार और धर्म-कर्म में

दूसरी ओर उसके आगे सत्यासत्य के संघर्ष का भी एक प्रश्न था। परिस्थिति की अनुकूल से भरी मिथ्याकथन की भीम भावनाएँ उस पर अपने अमोघ अस्त्र चला रही थीं। उलट-पुलटकर वह सोचने लगता, क्यों न वह इस बात से साफ इनकार कर जाय? भुस पर लीपना, जब किसी तार्किक के लिए, धर्म-संकट के अवसर पर आवश्यक हो जाता है, तब क्या वह उसका अवलम्ब ग्रहण नहीं करता? युक्तियाँ और तर्क आखिर हैं किस समय के लिए? अपनी स्थिति सम्हालने और कार्य-गति को प्रशस्त करने के लिए मिथ्याकथन कौन कहता है कि वर्जित है, अपराध है, पाप है? यह तो पुरातन संस्कारजन्य मानसिक दासता है न। विजय का पागल प्रेमी उसका अवलम्ब क्यों न ग्रहण करे? मनुष्य का यह महान मस्तिष्क प्रमाद और भ्रम से ग्रस्त इस संसार के आगे हार क्यों माने?

मन की गति विचित्र है। कुछ ही क्षणों के अन्दर, बात-की-बात में, ज्ञानप्रकाश इस पार से उस पार जा पहुँचा। वह उड़ रहा था। उसे बराबर यह अनुभव हो रहा था कि अन्धकार को भेद कर उसने विद्युत् की क्षणिक किन्तु तीव्र किरण प्राप्त कर ली है। प्रत्येक वस्तु अपने असली स्वरूप में उसे स्पष्ट दिखलायी पड़ रही थी। जान पड़ता है तभी क्षण भर के लिए नर्वोन्मत्ता की भर्त्सना-पूर्ण तिरस्कारमयी हो रही बातें सुनते हुए, एक बार कुत्सना से भरी मुस्कराहट उसके ओठों पर

दौड़ गयी। अतएव ज्योंही नयीअम्मा की बात समाप्त हुई, ज्ञानप्रकाश ने समधिक गुरु गम्भीर वाणी में कहा—

जान पड़ता है, तुमको मेरे सम्बन्ध में किसी ने भ्रम में डाल दिया है। कौन जाने इसका क्या दुष्परिणाम हो! कई दिनों से मैं बराबर एक-से-एक भयानक स्वप्न देख रहा हूँ। मेरी तबियत यों ही ठीक नहीं है। शरीर में रक्त के दबाव की गति बहुत बढ़ गयी है। नहीं कहा जा सकता, कब सभी कुछ समाप्त हो जाय और तुमको इस तरह की बे सिर-पैर की बातें करने का फिर कभी अवसर ही न मिले। आशा की बीमारी के सिलसिले में मुझे डाक्टर गंगोली के यहाँ जाना पड़ा। वहाँ मेरी हालत देखकर अकस्मात उन्होंने कुछ ऐसे प्रश्न किये कि मैं परेशान हो उठा। मुझे पता चला कि आफिस में बैठने का काम अधिक पड़ जाने और घूमने-टहलने का अवसर कम मिलने के कारण ही यह बात पैदा हो गयी है। इतना समय नहीं था कि डाक्टर साहब के यहाँ और अधिक ठहरकर अपने शरीर की भी परीक्षा करवा लेता। बस, उनके कमरे से निकलकर मैंने एक रेस्तोराँ में बैठकर शरबत पिया और आशा के यहाँ से मन्दा को लेकर यहाँ चला आया। हाँ, खाना जरूर उसी के यहाँ खाना पड़ा। इसीमें थोड़ी देर हो गयी। लेकिन इसका यह मतलब तो कतई हो नहीं सकता कि मैं अपने आचार और धर्म-कर्म को रसातल ले जाने का अपराधी हो गया हूँ।

ज्ञानप्रकाश का उत्तर अत्यन्त शीतल था। जलती हुई भट्टी के मुख में ईंधन का कौर अग्नि की लपटों को ऊपर की ओर भड़का देता है। ज्ञानप्रकाश चाहता तो जैसे को तैसा उत्तर दे सकता था। किन्तु एक तो भीतर से वह अतिशय चिन्ता-लीन था, दूसरे भविष्य के अपने उज्ज्वल पथ को वह उस समय सर्वथा तमसाच्छन्न देख रहा था। अतएव लपटों के शोले न उगलकर शान्त-स्निग्ध और करुणामयी वाणी में उसने अपनी परिस्थित स्पष्ट कर दी। नयीअम्मा पर जान पड़ता है इसका प्रभाव भी पड़ा। उन्होंने अनुभव किया कि ज्ञानू का वास्तव में यही शीतल शान्त और सुन्दर रूप है। दिवाकर की बातों पर उसे सन्देह हो उठा। तब उन्हें दुःख होने लगा कि व्यर्थ में ही मैंने मन्दा को मारा और उसको दुखी किया।

मन्दा दीवाल से लगी हुई सिसकियाँ भर रही थी। मनाने के इरादे से उसके पास जाकर पुचकारते हुए नयीअम्मा कहने लगीं—देर हो जाने से मैं बहुत घबरा रही थी मन्दा। क्रोध भी मुझे अचानक आ ही गया। उस दुष्ट दिवाकर ने भी मुझे सन्देह में डाल दिया था। देखो कैसा टरक गया!

मन्दा को पुचकारती, उसके सिर को अपनी छाती से चिपकाती और सिर पर हाथ फेरती हुई नयीअम्मा अपने सोने के कमरे की ओर जो जाने लगीं, तो ज्ञानप्रकाश ने कहा—बहिन का प्यार क्या चीज होता है, यह मैंने मन्दा से ही जान पाया

है। किन्तु मैं देखता हूँ, कि उस पवित्र स्नेह को भी पाने का अधिकारी मुझे नहीं समझा जाता। साधारण-सी बातों को लेकर मुझ पर अनावश्यक और अवाञ्छनीय सन्देह किया जाता है। मेरे पीछे जासूस छोड़े जाते हैं। इससे तो अच्छा था कि मैं शहर में ही रहता। रात-दिन की कलह से इस कीचड़ और दलदल में तो न आ फँसता। मेरे पीछे बेचारी अबोध मन्दा को भी तुम जो इतनी निर्ममता से प्रताड़ित करती हो इसका परिणाम अच्छा न होगा अम्मा। यह मैं आज साफ तौर से बतलाये देता हूँ।

नयीअम्मा मन्दा को लेकर सोने के कमरे मे चली गयी थीं; तो भी ज्ञानप्रकाश अपने स्थान पर खड़ा हुआ मन्दा के पीड़ित हृदय और उसके अविकल अश्रुपात को देख रहा था। आज फिर इस क्षण उसे परब्रह्म परमात्मा की अलौकिक सृष्टि और अदृष्ट के निर्मम कौतुकों का स्मरण हो आया। भीतर-ही-भीतर उसे भय होने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि आशा तो दूर चली जाय, किन्तु मन्दा उस पिशाचिनी के महाजाल मे जा फँसे। इस घर का वातावरण मन्दा जैसी सरल, भोली और दुग्धफेन सी उज्ज्वल प्रकृति की लड़की के कितना प्रतिकूल है!

यही सब सोचता और अतिशय धीरे-धीरे चलता हुआ उद्विग्न, म्लान और क्षुब्ध ज्ञानप्रकाश जब अपने शयनागार की ओर जाने लगा, तो कलाई पर बँधी घड़ी को देखकर वह चौंक गया।—अरे, साढ़े ग्यारह बज गये!

पन्द्रह

कल्याण-गर्ल्स-हाई स्कूल के आगे लान पर बैठी लता अपनी एक सहेली से बातचीत कर रही थी कि उसी समय स्कूल की दाई ने उसके निकट आकर कहा—तुमको तुम्हारे भाई साहब उधर खड़े हुए बुला रहे हैं।

लता अपनी नोटबुक और पुस्तकें वहीं छोड़ झट साड़ी सम्हालती हुई उठ खड़ी हुई। इधर दो दिन से ज्ञानप्रकाश उसके घर नहीं जा सका था। अचानक उसके आगमन के नवल कुतूहल से भरी लता प्रसन्नता के अभिनव आलोक से दाई के बतलाये संकेत पर दक्षिण ओर चल खड़ी हुई। उसके हृदय की गति थोड़ी तीव्र हो गयी थी। पैर कुछ तेजी के साथ उठ रहे थे। दोनों ओर खुली गोरी मांसल बाहुओं को उसने, साड़ी से, जम्पर के और आगे तक, ढक लिया था। वह सोच रही थी—जान पड़ता है, आज भी वे घर आयेंगे नहीं। तभी कोई बात कहने की इच्छा से बुला रहे हैं।

किन्तु गेट के निकट पहुंचते-पहुंचते उसके पैरों की गति में वह वेग नहीं रह गया, जब उसने देखा, वे नहीं हैं और उनके स्थान पर है वह पाजी दिवाकर। तब एकाएक वह दूर ही ठिठुक गयी। उसने चाहा कि वह चटपट कह दे—मुझे इस समय आपसे मिलने का अवकाश नहीं है और तुरन्त लौट जाय। किन्तु

अशिष्टता के आतङ्क से प्रभावित होकर वह इस तरह की बात कह न सकी।

इसी समय दिवाकर बोल उठा—चली आओ लता, खड़ी क्यों हो गयीं? मुझसे दो मिनट बातें कर लोगी, तो तुम्हारा कुछ छिन न जायगा। मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे रुष्ट हो, किन्तु मेरा इतना तो विश्वास करो कि मैं तुम्हें किसी प्रकार का अवांछनीय कष्ट न दूँगा।

विवश होकर लता तब भूमि की ओर अवनत दृष्टि से उसके कुछ और निकट जाकर खड़ी हो गयी।

दिवाकर ने कहा—कई दिन से मैं तुम्हारे घर आने की बात सोच रहा था। पर कुछ ऐसे कारण उपस्थित होते गये कि अब तक आ न सका। आशा की तबियत अब कैसी है?

उसी प्रकार नतमुखी रहकर लता धीरे-से बोली—अब तो अच्छी है।

"किन्तु देखता हूँ, तुम्हारी तबियत कुछ गड़बड़ है।" दिवाकर बोला—इधर महीनों से तुमको देखा नहीं था। मिलने का अवसर ही नहीं मिला। तुमने भी बँगले में आना छोड़-सा रक्खा है! आखिर मेरा अपराध क्या इतना बड़ा है कि वह जीवन-भर क्षमा नहीं किया जा सकता? यह ठीक है कि मैं किसी सेवा के योग्य नहीं हूँ। डिग्री के मोह में पड़कर यहाँ किसी तरह दिन काट रहा हूँ। कहीं सरविस कर लेता, तो ज्ञानू की

भाँति न सही, पर कभी-न-कभी किसी-न-किसी काम तो आ ही सकता था। जानता हूँ, मैं तुमसे बहुत दूर हूँ। कभी तुम्हें छू न सकूँगा। किन्तु मुझे जीवन का कोई वैसा मोह भी नहीं है लता। किसी-न-किसी दिन यही सुनोगी कि दिवाकर वहाँ जा पहुँचा है, जहाँ मनुष्य की कल्पना की कोई गति नहीं है, स्थिति नहीं है।

लता की वह अवनत दृष्टि अब ऊपर को उठ गयी। उसने देखा, जिस अवस दिवाकर से वह अत्यन्त भय रखती थी, आज का यह व्यक्ति वह दिवाकर नहीं है। यह तो कुछ और है। उसकी काया, वचन और आत्मा आँसुओं से भीगी, प्रायश्चित्त से दग्ध और उत्सर्ग से आप्लुत है।

लता दिवाकर के लिए सचमुच नवीन है। प्रथम परिचय में वह उसे एक आचारहीन विवेक-हीन अशिष्ट और लम्पट के रूप में देख पड़ा था। उसके बाद जो अन्तर पड़ गया, उसमें वह कभी उसके समक्ष न कभी काया में आया, न मन में। आज वह जो अपना यह रूप प्रकट कर रहा है, तो उसके प्रति लता विरक्ति रख सकती है, किन्तु घृणा कैसे रक्खे? मनुष्य का यह चिरपिपासु चिरलालसी मन, प्रमाद में [illegible] कुछ-का-कुछ समझ लेता है, और-का-और कर बैठता है। कौन इससे मुक्त हो सका है? [illegible] और [illegible] के [illegible] पदार्थ को वह [illegible] कर नहीं पाता। [illegible] निराश होता और [illegible] [illegible]

से दूर, पिपासा से परे, वासना से ऊपर मनुष्य की जो प्रेममयी, उत्सर्ग-विगलित पूतात्मा है, उसका प्रकृत प्रतिदान कहाँ इतना हीन और क्षुद्र बन सका है कि कठोर-से-कठोर और दृढ़-से-दृढ़ प्राणी उससे यकायक अभिभूत न हो जाय।

थोड़ी देर तक स्तब्ध, मूक और शान्त रहकर लता बोली—आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। आप कहाँ हैं, क्या सोचते हैं, मैं नहीं जानती—जानना भी नहीं चाहती। किन्तु परस्पर के दूर और निकट रहने का जो दृष्टिकोण आपने बना रक्खा है, वह कहाँ तक उचित और संगत है, यह मैं जानती हूँ। आप इससे परिचित होकर भी ऐसी बातें करेंगे, मैंने कभी इसकी कल्पना भी नहीं की। आप मेरे घर आ रहे हैं, शौक से आइये। मैं भी दीदी के साथ किसी दिन आपके यहाँ आऊँगी।

दिवाकर मूर्तिवत् स्थिर रह गया, कुछ न कह सका। मन में आया, वह कह दे—ऐसे समय मैंने यहाँ बुलाकर तुमको जो आकस्मिक कष्ट दिया, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। किन्तु यह बात भी उसकी वाणी पर आ नहीं सकी।

तब लता नमस्ते के रूप में हाथ जोड़कर बोल उठी—अच्छा तो अब मैं आज्ञा चाहती हूँ।

और वह पुनः उसी स्थान की ओर चल दी, जहाँ सखी मदालसा और गौतमी उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

दिवाकर अब भी उसी जगह पर खड़ा हुआ था। लता

के पृष्ठ-भाग पर उसकी दृष्टि स्थिर थी। वह देख रहा था—साड़ी की आसमानी कोर में वह जलाशय में तैरती बतखों की पंक्ति है। चप्पल का लेदर एकदम धानी वर्ण का है। गुथी हुई चोटी का क्रमागत क्षीण उतार और उसके छोर पर रेशमी फीते की तितली झलक रही है। देह-यष्टि के नवल विकास और यौवन-विटप के प्रकृत उभार का यह सघन छायामय वितान जैसा कमनीय है—वैसा ही प्राण-पीड़क।

एक शीतल निःश्वास लेकर दिवाकर ने साइकिल सम्हाली। फिर आहत हृदय और अस्थिर मस्तिष्क लेकर वह अपने कालेज की ओर चल दिया। थोड़ी देर में जब वह कालेज पहुंचा, तो उसे पता चला कि उसका जो एक पीरियड खाली था, उसकी अवधि बीते आध घण्टे से अधिक हो गया है। चुपचाप वह इतिहास का लेक्चर अटैण्ड करने के लिए कमरे के पीछे के दरवाजे से अन्दर जाकर सुधीर और कंचन के निकट बैठ गया।

सुधीर ने पूछा—कहां थी हुजूर की सवारी ?

संकेत से लेक्चर की ओर ध्यान देने की बात कहते हुए वह बोला—जोर से भूख लगी थी। इसीलिए जलपान करने चला गया था।

थोड़ी देर में छुट्टी पा जाने पर रूम से बाहर होते ही कंचन की ओर देखकर सुधीर बोला—कुछ समझा तुमने ?

"क्या ?" आश्चर्य से कंचन ने पूछ दिया।

ग्यारह बजे आप कालेज आते हैं और दो-ढाई बजे आपको भूख लग आती है ! अब प्रश्न यह है कि भूख अगर लग ही आती है, तो चोरी से आप चुपचाप खसक क्यों जाते हैं !

दिवाकर अपनी मुसकराहट रोक न सका।

कंचन ने कहा—बाई गॉड आई कैन प्रैकूली से, दैट यू हैड नाट टेकिन ऐनी थिंग ऐट दिस टाइम। यू आर आलवेज सीकिंग ए लाई दिवाकर।

दिवाकर सोचता है, कंचन का कहना ठीक है, तो भी एक तरह से वह कितने भ्रम में है ! मैं झूठ बोलता हूँ; यह भी माना कि झूठ ही अधिक बोलता हूँ। लेकिन क्यों ? क्योंकि मैं जिसे प्राप्त करना चाहता हूँ, उसको पहले से कहना नहीं चाहता—बतलाना नहीं चाहता। जब तक कार्य पूर्ण न हो जाय, उद्देश्य को, आदर्श को, वह प्राप्त न करले, तब तक कोई किसी को अपनी स्थिति का परिचय क्यों दे ? संसार के सारे व्यापार, समस्त व्यवहार, इसी भाँति चलते हैं। मनुष्य ने जब अपनी आँखें खोलीं—विश्व के आँगन को देखा—तब उसे क्या पता था कि वह कहाँ आ गया ? कौन उसे बतलाने आया कि तू कहाँ आ पहुँचा है। लेकिन वह यकायक आ गया। नदी की गहराई भी क्या तैराक से कभी कहने बैठती है कि यहाँ खड़े होने का साहस न करना ? उसदिन मैं साइकिल पर इतमीनान के साथ जा रहा था कि यकायक मोटर की चपेट में आते-आते बचा। मोटर

अगर डेडस्टाप न कर दे, तो मैं अपना अस्तित्व ही खो बैठूं। किसने मुझे बतलाया कि काल के मुँह के निकट जाकर तू बच जायगा। कल की कौन जानता है? लता को कोई बतलाने गया था कि उसके स्कूल के गेट पर ज्ञानप्रकाश नहीं, दिवाकर खड़ा है। साधना को मैं समझ बैठा था, वह मेरी प्राण है—सर्वस्व है, किन्तु कौन जानता था कि लता की एक ही झलक मेरे स्वप्नों के राज्य से साधना को इतनी दूर हटा देगी? मैं खुद भी तो नहीं कह सकता, लता मेरे लिए अमृत है कि विष। कौन जानता था कि लता मेरे मेरे जीवन में इस तरह अचानक आकर एक ज्वालामुखी सुलगा देगी?

रही बात सत्य के ग्रहण की। सो हमारी यह बावली दुनियाँ सत्य पर कितनी आधारित है? आत्मा की पुकार, हृदय का उद्वेलन आज हम किसी पर प्रकट कर भी दें, तो नतीजा उसका? कौन मुझे छोड़ देगा? किसका हृदय सागर की भांति अगम बन सका? कौन समर्थ है कि बात पचा सके। फिर बात खुल जाने पर उसके दुष्परिणाम? उस दिन अगर ज्ञानप्रकाश बातें बनाकर अपनी रक्षा न करता, तो? और जिज्जी स्वतः कितने न्याय-पथ पर हैं? क्या ज्ञानप्रकाश उनके लिए वह बन सका, जो धर्मप्रकाश है? फिर ज्ञानप्रकाश और धर्मप्रकाश के अन्तर को मिटायेगा कौन? प्रत्येक व्यक्ति की आंखों पर एक भ्रम का परदा पड़ा रहता है। विकार-हीन, कपट-हीन, सत्य के आलोक से प्रकाश

मान मनुष्य की स्थिति बन कहाँ सकी ! शरीर के भीतर आकाश और आकाश के भीतर शरीर—सत्य का अन्तर चीरकर उसमें राज्य करनेवाले असत्य और असत्य की कटुता और पैशाचिकता पर सदा उपेक्षा और तिरस्कार का विद्रूप हास रचने वाले सत्य, दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा ? फूलों से काँटे मिलकर बैठते हैं। पत्तियों के ऊपर वे शयन करते और रहते हैं। काँटा अगर असत्य का ही प्रतीक है ; तो उसके रेशे-रेशे में फूल की खुशबू क्या है ? बबूल और गोखरू के काँटों की महिमा आयुर्वेदाचार्य्यों से पूछी जाय, तो ? संसार की अनित्यता का परिचय काँटों के सिवा देगा कौन ? प्रकाश अन्धकार का अन्तर भेदकर फूट पड़ता है। और प्रकाश के भीतर छाये हुए अन्धकार में मानवात्मा की जो शान्ति-शय्या है वह ? सत्य के प्रयोगों पर जीवन को उत्सर्ग करनेवाले टाल्स्टाय और गांधी, कौन कह सकता है कि असत्य से अछूते रह सके ? मुसोलिनी और हिटलर ने अपने जीवन का निर्माण कैसे किया ?

लेकिन और भी दो उदाहरण हैं। भगवान कृष्ण ने महाभारत में अस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की। लेकिन गांगेय भीष्म ने उस प्रतिज्ञा पर जो प्रकाश फेंका, वह क्या बतलाता है ? मर्यादा-पुरुषोत्तम राम जगज्जननी सीता का त्याग करते हैं एक सर्वथा असत्य और असम्भव [illegible] कथन के आधार पर

और दुनियाँ आज भी डंका पीटती है सत्य-ग्रहण का ! कितना भारी भ्रम है !!

सुधीर ने कहा--सच सच बतलाओ दिवाकर, तुम कहाँ गये थे ? तुम्हे मेरी कसम ।

और दिवाकर बोला—कसम पर मेरा फेथ नहीं। मैंने बतलाया न, मुझे सचमुच भूख लगी थी। मै कुछ खाने गया था, उस पासवाले रेस्तोरां मे। मै बड़े चक्कर मे हूँ सुधीर। मेरे चारों ओर ज्वालामुखी सुलगते है। जीजाजी की उदारता पर मै उनके बँगले मे रहता और यहाँ पढ़ता हूँ। उनके प्रथमविवाह का लड़का मेरा भागिनेय है वह ज्ञानप्रकाश। जानते तो सब हो। देख तो चुके हो। किसी भी क्षण उसके जाल मे पड़कर मैं कानपुर छोड़ने पर मजबूर हो सकता हूँ। मुझसे खाना तक, कभी-कभी ठीक तरह से खाया नहीं जाता, वक्त-बे-वक्त देर-सबेर भी हो जाती है। आज भी ऐसी ही बात थी। मैंने बतलाया न, मैं ज्वालाओं से घिरा हुआ हूँ।

दिवाकर का चेहरा इस समय अत्याधिक गम्भीर हो गया था। युक्ति के प्रकाशन म कल्पना से उछलकर वह अनुभूति के अञ्चल मे जा लगा था।

दिवाकर पहले ज्ञानप्रकाश से दूर-ही-दूर रहता था। बात-चीत करना और मिलना-जुलना दूर रहा, उसकी छाया तक से आतङ्कित रहता था। अब, ऐसी बात नहीं थी। उत्तरोत्तर ज्ञानप्रकाश में वह एक उच्च व्यक्तित्व का अनुभव कर रहा था। उसके आशावाद और दृढ़ आत्म-विश्वास का वह कायल था।

इस समय दिवाकर की दृष्टि लता पर थी। वह उसके प्रत्येक क्षण के भाव-विपर्य्यय के अध्ययन में लीन था। कैसे उसने चाय की केतली उठाई और कैसे सब प्यालों में छानकर डाल दी, कैसे दूध की प्याली से सभी प्यालों में बराबर दूध छोड़ा। किसकी ओर देखकर—किस भाव से—अपना कार्य-निर्वाह किया।

आशा भीतर से उद्विग्न किन्तु प्रकट रूप में यथेष्ट प्रसन्न देख पड़ती थी। वार्तालाप का सिलसिला इस समय उसी के हाथ में था। नवम्बर मास चल रहा था और इस समय रात थी। अतएव वह साड़ी के ऊपर एक चौड़ा ऊनी मफ़लर भी डाले हुए थी। फिर से स्वस्थ होने के बाद वह आँखों पर एक स्लेटकलर के सैल्यूलाइड फ्रेम का चश्मा भी लगाने लगी थी। लता जब चाय के प्यालों में चीनी के भी दो-दो स्पून छोड़ चुकी, तो आशा ने कहा—आज पहला दिन है, जब मैं मानू साहब को भी चाय-पान के सिलसिले में अपने निकट देखती हूँ।

तुरन्त होंठों पर मन्द हास की छाप डालता हुआ दिवाकर

बोला—कृपा करके आप मुझे मामूसाहब न कहा करें मिस आशा। नाम लेना ही मेरे लिए अधिक अच्छा होगा।

बात कहकर वह लता की ओर देखने लगा। उसने अनुभव किया, लता उसकी बात से अप्रसन्न नहीं हुई। तब वह फिर कहने लगा—मैं बुजुर्गवार बनना पसन्द नहीं करता। रिश्ते दूर से जितने अच्छे लगते हैं, निकट लाकर वे आदमी को उतनी ही दूर फेंक देते हैं। इसके सिवा अगर आप मुझे क्षमा कर दें, तो मैं कहूँगा कि मामू वास्तव में मैं मन्दा का ही हूँ, और किसी का नहीं। ज्ञानूबाबू भी मेरे लिए एक आदरणीय मित्र और उससे भी ऊपर बड़े भाई के समान हैं।

ज्ञानप्रकाश इस समय बोल उठा—तब तो मुझे भय होना चाहिए कि मैं भी कहीं अपने आप को तुमसे और भी दूर न पाऊँ!

इस पर आशा हँसने लगी। बोली—खूब!

"लेकिन आपको इतना ज्ञान तो होना चाहिए कि मैंने आपको ज्ञानूबाबू कहना शुरू कर दिया है।" दिवाकर ने कहा।

लता बोला—और तमाशा यह है कि आप इतना भी ज्ञान नहीं रखते!

दिवाकर कुछ अप्रतिभ हो उठा। किन्तु फिर सम्हलकर बोला—बात यह है कि पृथ्वी के इस भाग में इस समय अन्धकार छाया हुआ है और मैं हूँ उस पार।

"इसके सिवा एक बात और है दिवाकर भाई," ज्ञानप्रकाश ने कहा—हम और तुम वास्तव मे हैं तो एक ही वस्तु के दो रूप। तभी उसपार से बोलने पर भी तुम्हारा ही प्रकाश यहाँ प्रतिबिम्बित है।

आशा बोली—प्रकाश का प्रतिबिम्ब। खूब!

जोर देकर दिवाकर कहने लगा—निस्सन्देह प्रकाश का प्रतिबिम्ब।

इसी क्षण टोस्ट दाँत से लगाती हुई लता ने जो दिवाकर की ओर दृष्टि डाली तो उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह आगे भी कुछ कहने जा रहा था, किन्तु फिर रुक गया।

तब वह बोली—मामूसाहब में इधर काफी परिवर्तन हुआ है दहा। वेशभूषा मे तो परिवर्तन हुआ ही है, दृष्टिकोण मे भी कुछ प्रगतिशीलता देख पड़ती है। आपकी क्या राय है?

"मै चाहती हूँ कि ज्ञानूबाबू के उत्तर के पहले मै अपनी राय दे लूँ।" आशा बोली—यद्यपि मनुष्य के पूर्ण अध्ययन का मैं दावा नहीं करती, तो भी इतना तो मैं कह ही सकती हूँ कि चलने के प्रकार बदल सकते हैं, किन्तु मनुष्य अपनी प्रकृति नहीं बदल सकता।

"किन्तु मै तो समझता हूँ कि शैली ही व्यक्तित्व है—स्टाइल इज दी मैन।" कहकर दिवाकर ज्ञानूबाबू की ओर देखने लगा।

ज्ञानप्रकाश कहने जा रहा था कि दोनो चीजें एक ही हैं। शैलियाँ अगर बदलती है, तो व्यक्तित्व भी बदलता है। किन्तु

आशा के कानों में पड़े भूमरों के हिलने की छवि के साथ उसका मन भी जैसे दोलन करने लगा। तब वह चुपचाप उसे देखता ही रहा, कुछ बोला नहीं।

इसी समय कटोरी तश्तरी में पान ले आयी। साथ ही सिगरेट का पैकेट और दियासलाई की डब्बी भी। लौटती हुई वह चाय की ट्रे में फैले हुए प्याले और प्लेट्स क़ायदे से रखकर ले गयी। ज्ञानप्रकाश ने पान खाया और सिगरेट सुलगायी। दिवाकर ने केवल सिगरेट ली। पहले उसी की सिगरेट सुलगाकर ज्ञान-प्रकाश ने जब अपनी सिगरेट में जलती दियासलाई की लौ लगाकर पहला कश लिया, तो दिवाकर उठ खड़ा हुआ। बोला—अब मैं चलूँगा।

लता बोली—बैठिये। हम लोग भी चलते ही हैं।

इसी समय पुनः कटोरी ने आकर कहा—छोटे बाबू, आपको माँ जी बुला रही हैं। डॉक्टर साहब आ रहे हैं।

ज्ञानप्रकाश जब उठकर चलने लगा, तो आशा बोली—मैं भी चलूँगी।

लता भी उठकर उसके पीछे जाने ही वाली थी कि आशा बोली—तुम यहीं रहो लता। मैं अभी आती हूँ।

तब ज्ञानप्रकाश आगे हो लिया। आशा उसके पीछे चलने लगी। दिवाकर पहले उठा था, किन्तु अब तक वह गया नहीं।

दो-तीन क़दम आशा के पीछे चलकर फिर लौट पड़ा और लता के पास आकर खड़ा हो गया।

लता ने पूछा—गये नहीं आप ?

जाने के पहले तुमसे एक बात कहना चाहता था। कल हम लोगों की एक कन्सर्टपार्टी है। उसमें क्राइस्ट-चर्च कालेज की कुछ छात्राएँ भी आमंत्रित हैं। क्या मैं आशा करूँ कि . ।

मुसकराती हुई लता बोली—आना कहाँ होगा ?

"मेस्टनरोड पर कंचन का मकान तो आपने देखा ही होगा। जिसके एक भाग में गुडलक रेस्तोराँ नया-नया खुला है।"

"देखा है।"

"बस-इसी में।"

"लेकिन किस समय ?"

"ठीक साढ़े छै बजे।"

"अच्छी बात है।"

"टी का भी प्रबन्ध रहेगा।"

"मैं आ जाऊँगी।"

"बड़ी कृपा होगी।"

"तो फिर नहीं आऊँगी।" कहती हुई लता मुसकराने लगी।

दिवाकर ने इस समय एक बार दरवाजे में पड़ी चिक की ओर देखा। फिर झट से लता के और निकट जाकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर उसे दबाते हुए कहने लगा—मैं तुमसे ऐसी

ही आशा करता था लता। मैं कह नहीं सकता, आज का दिन मेरे लिए कितने सौभाग्य का है।

लता बोली—यह शिष्टाचार रहने दो।

इसी समय डॉक्टर साहब आ गये! दिवाकर तब झट से उठकर उसी ओर चल दिया। लता भी पीछे हो ली।

सत्रह

एक दिन रविवार को दोपहर के समय ज्ञानप्रकाश जो आशा के घर पहुँचा, तो वह घर मे नहीं देख पड़ी। जानकी का भी कोई आभास नहीं मिला। तब उसने पूछा—अम्मा कहाँ गयीं लता?

लता बोली—तपेश्वरी देवी के मंदिर मे।

"और आशा?"

"वे ऊपर सो रही हैं।"

"सो रही हैं! अच्छा!"

लता कमरे के अन्दर पलँग पर लेटी हुई पाठ्यपुस्तक देख रही थी। द्वार से अचानक किसी के आने की आहट पाकर वह उठकर बैठ गयी थी। ज्ञानप्रकाश जब आँगन मे आ गया, तो वह बरामदे मे आ पहुँची थी। उससे वह ये दो बातें पूछकर सीढ़ी से ऊपर जाने लगा, तो उसने कहा—आपसे मुझे कुछ कहना है।

ज्ञानप्रकाश दो-तीन सीढ़ी ऊपर चढ़ गया था। लता की बात सुनकर वह फिर आँगन में आ गया।

लता बोली—इधर निकल आइये।

वह अपने पढ़ने के कमरे में उसे ले गयी। एक अच्छी-सी कुरसी टेबिल के उस ओर कर दी और बोली—बैठिये। फिर वह आप इस ओर दूसरी पुरानी कुरसी पर बैठ गयी और बैठते ही बोली—जरा इसका अर्थ बता दीजिये। और उसने रामायण की एक चौपाई रेखाङ्कित करके ज्ञानप्रकाश के सामने कर दी।

चौपाई बहुत साधारण है। उसका जो प्रचलित अर्थ है, लता उसे जानती भी है। तो भी उसने ज्ञानप्रकाश से उसका अर्थ पूछा है।

ज्ञानप्रकाश ने पहले उसे पढ़ दिया—श्याम गौर किमि कहौं बखानी—गिरा अनयन नयन बिनु बाणी। फिर आश्चर्य के साथ उसने कहा—बहुत साधारण चौपाई है। तुम इसका अर्थ नहीं जानतीं, मुझे विश्वास नहीं होता। हाँ, यदि कोई शंका हो, तो पूछ लो।

लता ने पूछा—वाणी के नेत्र नहीं होते, न नेत्रों के वाणी। मुझे कवि के इस कथन पर आपत्ति है। वाणी के नेत्र होते हैं और नेत्रों ने भी वाणी पायी है।

"यह तो बात ही दूसरी हुई, लता" ज्ञानप्रकाश बोला—कवि की उक्ति में उस समय वाणी और नयनों की क्षमता का

स्थूल अर्थ रहा होगा, यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु तुम जो शंका उपस्थित कर रही हो, वह मेरी समझ में आ रही है। इसके सिवा एक बात और है। आज वाणी के नेत्र और नेत्रों की वाणी का तुमने जो अनुभव किया है, कविश्रेष्ठ तुलसीदास उसको समझते न हों, यह बात नहीं है। पर मनोभावों की व्याख्या वास्तव में की ही नहीं जा सकती। उर-अन्तर का वह जो क्रन्दन है, जिससे भीगकर प्राणों में विकलता और अणु-अणु में जलन उत्पन्न हो जाती है, वाणी क्या कभी उसे प्रकट करने में कृतकार्य हो सकी है। जीवन में तूफान आते हैं तो हमारे भाव-जगत् में अनायास जो बवण्डर उपस्थित हो जाते हैं, उनका यथार्थ चित्र वाणी पर क्या कभी आ सका है? माना कि वाणी के नेत्र होते हैं, अपनी क्षमता को वह कानों के द्वारा अनुभव करती किंवा देखती है। यह भी माना कि नयनों का उल्लास और विषाद, विस्मय और रुद्र-रूप प्रकट हो जाता है। किन्तु क्षण-क्षण की हमारी भावना-लहरी को न कभी वाणी प्रकट कर सकी है, न नयनों की भाषा।

मोह-विह्वल लता बोली—और भी कुछ कहिये। कहते जाइये। मैं बराबर सुनती ही रहना चाहती हूँ।

ज्ञानप्रकाश को स्पष्ट बोध हुआ, लता उससे खिलवाड़ कर रही है। उस दिन उसने जब दिवाकर के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहे थे, तब उसे थोड़ा विस्मय हुआ था। उसने समझ लिया

था, लता वयस्क हो रही है। मानवात्मा के प्रति उसका मन अध्ययनशील हो उठा है। किन्तु आज उसी लता के पास इस एकान्त में बैठकर उससे बातें करता हुआ वह सोचने लगा—लता के इस कथन में जो स्निग्धता है, उसकी निवृत्ति कहाँ है—निष्पन्न वह कैसे हो सकती है!

इसी क्षण पुनः लता बोल उठी—बोलिए न, आप तो चुप हो रहे।

ज्ञानप्रकाश कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया। अतिशय गम्भीर होकर उसने कहा—मुझे माफ़ कर दो लता। मैं इस समय और कुछ न बतला सकूँगा।

वह बाहर आँगन में आ गया। सीढ़ी की ओर उसे बढ़ते देखकर लपककर लता उसके निकट आ गयी और बोली—अच्छा एक चौपाई का अर्थ और समझाते जाइये, सुनिये, सुनिये तो। आप ऊपर व्यर्थ जा रहे हैं। दिदिया तो अम्मा के साथ तपेश्वरी देवी का दर्शन करने गयी हैं।

ज्ञानप्रकाश तब सीढ़ी से उतरकर फिर आँगन पार करता हुआ बाहर जाने लगा। बोला—तब मैं जाऊँगा लता।

लता मर्माहत स्थिर रह गयी। उससे कुछ भी कहते न बन सका।

उस दिन रामनारायन के बँगले से लौटकर लता रात में एक

बजे तक जगती रही थी। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। दिवाकर ने कन्सर्टपार्टी में आने का निमंत्रण दिया था और उसने जो उसे स्वीकार कर लिया था, उसी पर वह मन-ही-मन पछता रही थी। उस रात उसने घर पर आकर खाना नहीं खाया था। माँ से कह दिया था—मेरे सिर में बड़ा दर्द हो रहा है। भूख भी मुझे नहीं है। करवटें बदल-बदलकर वह अपने आप से पूछती थी—तूने दिवाकर से बात ही क्यों की? वह तेरा होता कौन है? लम्पट है वह, पाजी और बदमाश। क्यों तू ने उसका निमंत्रण स्वीकार किया? तेरी भूख इतनी प्रबल हो गई कि भक्ष्याभक्ष का भी तुझे विवेक नहीं रह गया! जा, जा, देख तो सही, उस पार्टी की रूप-रेखा! थोड़ा-सा मज़ा तो चख ले दिवाकर के साथ का! नीच!!

दूसरा दिन हुआ। वह बराबर अपने आप से युद्ध करती रही। उसने तै कर लिया कि यदि दिवाकर उसे लेने भी आया, तो भी वह नहीं जायगी। आने के समय तक वह बराबर उसकी प्रतीक्षा करती रही। क्षण-क्षण पर वह द्वार की ओर देखती थी। न माँ से वह आज ठीक तरह से बोली थी, न आशा से। रात में ही उन लोगों ने समझ लिया था, उसकी तबियत ठीक नहीं है, इसीलिए वह अन्यमनस्क है। किन्तु थोड़ी देर में दिवाकर जब उसे लेने आया, तो प्रसन्न होकर उसने कहा—आइये।

आशा बोली—बड़ी कृपा की।

फिर उसने अपने पढने के कमरे मे ले जाकर उसे आदर-पूर्वक बिठाया।

अम्मा ने कहा—धन्य भाग्य, आप मेरे यहाँ आये तो। मन्दा की तबियत तो अच्छी है न? आशा कह रही थी, वह बहुत दुर्बल हो गयी है। क्या बताऊँ, यहाँ गृहस्थी के भ्रम-जाल के मारे मेरा तो घर से भी निकलना मुश्किल हो गया है। फिर आजकल तो और परेशानी है। आशा जो किसी तरह अच्छी हुई, तो आज लता की तबियत गड़बड़ है। रात उसने खाना नहीं खाया।

"लेकिन मै तो उसे लेने आया हूँ।" दिवाकर बोला—आशा तुम भी चलो न। जल्दी मे मैं तुमको आमंत्रित करना ही भूल गया। इसके लिए मैं—बल्कि—माफी चाहता हूँ।

आशा ने पूछा—कहाँ?

विस्मय से दिवाकर ने कहा—अरे! लता ने कुछ बतलाया नही? मैने आज मेस्टनरोड पर कन्सर्टपार्टी का प्रबन्ध किया है। क्राइस्ट-चर्च-कालेज की कई छात्राएँ आने वाली हैं। मैं बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा। खैर, अब चलो झट से। गाड़ी ले आया हूँ।

अभिभूत लता बोली—कल ही से मेरी तबियत खराब है। इसलिए मै तो जाऊँगी नहीं, दिदिया को ही ले जाइये।

दिवाकर कुछ अप्रतिभ हो उठा। किन्तु फिर सम्हलकर

बोला—वहाँ पहुँचने पर जो मनोरंजन होगा, उससे तबियत बहल जायगी। क्या तबियत खराब है—देखूँ।

और उसने हाथ बढ़ाकर लता की कलाई पर लगा दिया।

पर लता उस स्पर्श से बिचककर दूर जा खड़ी हुई। बोली—आप दूर से ही बात किया कीजिये मिस्टर दिवाकर। मुझे आप का यह ढंग पसन्द नहीं है। आप कोई डाक्टर या वैद्य तो हैं नहीं। परिचय भी अभी आप से मेरा कल का है। शील में आकर मैंने आप का निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। पीछे जब मुझे अपनी स्थिति का विचार हुआ, तो मुझे अपनी गलती मालूम हुई। आप को जो कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है।

बस, इसी बात के साथ वह अपने कमरे में चली आयी थी।

आशा ने कहा था—उसकी तबियत ठीक नहीं है। देखते नहीं हैं, मुख कैसा लाल हो रहा है। आप को कष्ट जरूर हुआ, लेकिन लाचारी है।

किन्तु तब जानकी ने कहा था—लेकिन चार मित्रों के बीच में वह कितना लज्जित होगा, इसका भी तो कुछ विचार करना चाहिए। न हो, तू ही चली जा आशा।

आशा ने पहले तो इधर-उधर किया। बोली—बीमारी के कारण यों ही मेरी पढ़ाई पिछड़ गयी है। मुझे अपना कोर्स तैयार करना है। अतएव मुझे तो आप क्षमा करें।

लेकिन दिवाकर किसी प्रकार खाली वापस जाने पर राजी न

हुआ। जानकी ने बहुत जोर दिया। अन्त मे वह बोली—तुझे जाना ही चाहिए आशा।

और तब विवश होकर आशा को ही वहाँ जाना पड़ा।

किन्तु जब वह अकेली चली गयी, तो लता फिर पछताती रह गयी। बार-बार उसके मन मे आया—मैने दिदिया के साथ जाने का कितना सुन्दर अवसर खो दिया। किन्तु फिर यह भाव भी थोड़ी ही देर तक उसके मन मे स्थिर रह सका। उसके बाद, उसे वहाँ न जाने के लिए प्रसन्नता ही हुई। वह सोचती रही, दिवाकर के जाल से वह जो अपनी रक्षा कर सकी, यह कितना अच्छा हुआ! स्थिति भी उसने अपनी साफ़ कर ली। अम्मा और दिदिया को भी पता चल गया कि मैं क्या हूँ।

और आज अभी जब ज्ञानप्रकाश उसके घर आया, तो उसे अतिशय आनन्द उपलब्ध हुआ। एकान्त मे उससे बातें कीं, और प्राणों मे अमृत घोलनेवाले शब्द उसके मुख से सुने। कैसी सुन्दर बात उन्होंने कही थी। वह सोचने लगी—उर-अन्तर का वह जो क्रन्दन है, जिसमे शरीर का अणु-अणु जल उठता है, वाणी पर क्या कभी आ पाता है ? "

मुग्ध हो उठी वह उनकी इस बात पर।

किन्तु वही लता इस समय कैसी विकृत हो गई। वास्तव मे आशा ऊपर के कमरे मे सो रही है और ज्ञानप्रकाश उससे मिले बिना निराश लौट गया है।

अठारह

रात के ग्यारह बज गये थे। धीरे-धीरे सभी लोग सो गये थे। केवल मन्दा की आँखों में नींद नहीं थी। ज्ञानप्रकाश उसके निकट कुरसी डाले बैठा हुआ था। कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। कोई कुछ बोल नहीं रहा था। मन्दा लिहाफ ओढ़े हुए चुपचाप लेटी हुई यद्यपि छत की ओर देख रही थी, किन्तु कभी-कभी वह ज्ञानप्रकाश की ओर भी इकटक देखती रह जाती थी। मुख पर दृष्टि जाते ही वह सब से पहले उसकी आँखें देखती थी। आँखों से ही वह उसके मनोभाव जान लेती थी। बहुत-सी बातें उसके भीतर भरी हुई थीं, किन्तु कुछ तो वह कह नहीं सकती थी, और कुछ कहना नहीं चाहती थी। यह सब कुछ था, तो भी यदा-कदा ज्ञानप्रकाश की ओर देखकर उसकी आँखें भर आती थीं।

रायपत्नी को गये हुए देर हुई। जाते समय वे कह गयी थीं—तू तो अभी बैठा ही है ज्ञान, मैं अब सोऊँ न जाकर? मुझे अब नींद आ रही है। दिन को आजकल बीसों झंझटों के मारे सोने नहीं पाती हूँ। इसीलिए रात को इधर जल्दी नींद लग आती है। फिर इस समय ऐसी कोई जल्दी भी नहीं है। ग्यारह बज चुके हैं। मन्दा तू भी अब सो जा बेटी। देख तेरा तब तक नहीं चलेगा, जब तक तू सो नहीं पायगी।

मन्दा ने कहा—हाँ, अब तुम जाओ अम्मा।

माँ की बात सुनकर, उसके चले जाने पर, नन्दा एक बार ज्ञानू की ओर देखकर थोड़ी मुसकरायी थी। ज्ञानप्रकाश ने तत्काल इसको लक्ष्य करके पूछा था—क्या बात है नन्दा?

नन्दा ने कह दिया—कुछ नहीं। यों ही मुझे हँसी आ गयी।

किन्तु ज्ञानप्रकाश ने तब यह नहीं पूछा कि हँसी ही आ जाने का कारण तो मैं जानना चाहता हूँ। बात यह हुई कि नन्दा के ओठों की वह मुसकराहट थोड़ी ही देर स्थिर रह सकी। देखते-देखते, उसके प्रश्न करते-करते, वह तिरोहित हो गयी और फिर कुछ ही क्षणों के बाद मन्द स्वर से उसके मुँह से निकल गया—अम्मा मुझे बेवक़ूफ़ समझती हैं।

और वह एक बार फिर ज्ञानू की ओर देखकर रह गयी।

"क्यों नन्दा, ऐसा भाव तुम्हें उनके सम्बन्ध में क्यों हुआ?" ज्ञानप्रकाश ने गम्भीरता से पूछा। यों वह नहीं चाहता था कि उसकी रुग्णता के ऐसे समय उसको अधिक बात करने का अवसर दे। किन्तु यदि उसे किसी प्रकार का भ्रम हो गया हो, तो वह उसका तुरन्त दूर कर देना भी अपना तात्कालिक परम कर्तव्य समझता था।

नन्दा ने कहा—जिस दिन से डाक्टर साहब तुम्हें देख गये हैं, अम्मा कभी मेरे पास निकट नहीं बैठीं। उन्हें हमसे डर लगता है। [illegible] और जहाँ तक [illegible] समझती हैं मेरे [illegible] हैं।

"ऐसा नहीं है मन्दा" ज्ञानू ने उसके सन्देह को दूर करने के अभिप्राय से कहा—यह तुमको भ्रम हो गया है। कोई भी माँ अपनी सन्तान के प्रति ऐसी निष्ठुर नहीं हो सकती। फिर अम्मा ! छिः, ऐसी बात कभी मत सोचना मन्दा। इसके सिवा तुम ऐसी ज्यादा बीमार भी तो नहीं हो। दस-पाँच दिन में तुम बिल्कुल अच्छी हो जाओगी। चिन्ता की कोई बात नहीं है।

इस पर मन्दा चुप रह गयी। अब वह केवल छत की ही ओर इकटक देख रही थी। किन्तु यकायक ज्ञानू ने जो उसे ध्यान से देखा, तो उसे जान पड़ा, मन्दा की आँखों की कोर पर आँसू झलक रहे हैं और टपकना ही चाहते हैं।

तब वह बोल उठा—अरे !—तू तो रोती है मन्दा ! मेरे रहते हुए भी तू रोती है !!

स्वतः उसका कण्ठ रुद्ध होना चाहता था, किन्तु बड़े संयम के साथ स्थिर रहकर वह उठ खड़ा हुआ। मन्दा के आँसू उसने अपने रूमाल से पोंछ दिये।

बात यह हुई कि जब ज्ञानप्रकाश ने कह दिया कि कोई भी माँ अपनी सन्तान के प्रति ऐसी निष्ठुर नहीं हो सकती, तब मन्दा को उस क्षण की सुधि आ गयी, जब (अभी कुछ ही दिन हुए) उसने उसके गाल पर तड़ से तमाचा जड़ दिया था और फलत देर तक वह बराबर रोती रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उसके वे तमाचे अभी-अभी लगे हैं और उसकी

बोली—अब तुम जाओ। मैं भी सोयी जाती हूँ। और उसने आँखों को पलकों से ढक लिया। फिर वह बोली—लाइट आफ़ कर दो और जाओ।

ज्ञानप्रकाश ने बिजली का स्विच उठाकर बल्ब बुझा तो दिया, किन्तु तब भी वह गया नहीं। पुनः उसी कुरसी पर आकर बैठ गया। मन्दा ने पहले तो समझ लिया कि वह चला गया है, किन्तु उसके भीतर फिर सन्देह जग उठा। वह बोली—दद्दा!

ज्ञानू ने पहले तो सोचा, उत्तर न देकर मौन ही बना रहूँ, किन्तु फिर वह अपने इस निश्चय पर दृढ़ न रह सका। बोल ही उठा—क्यों, क्या चाहिए?

मन्दा बोल उठी—तुम अभी तक बैठे ही हो! सोने क्यों नहीं गये?

"यों ही नहीं गया।" ज्ञानू बोला। फिर थोड़ी देर रुककर वह पूछने लगा—और तू तो कहती थी कि मैं भी अब सोयी जा रही हूँ।

मन्दा चुप रही। जगती हुई भी वह कुछ बोली नहीं, शायद यह दिखलाने के लिए कि उसे वास्तव में नींद आ रही है।

ज्ञानप्रकाश उठा और लाइट का स्विच दबाकर देखने लगा कि लिहाफ़ वह ठीक ढंग से ओढ़े हुए है या नहीं। फिर स्विच उठाकर वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया।

आज दिन-भर में अनेक बार मन्दा के मन में एक ही संकल्प

मतलब नहीं है। मुझे तो मरना है! मैं तो सिर्फ मर जाना चाहती हूँ। किन्तु इसी क्षण उसे याद आने लगा कि दद्दा पर क्या बीतेगी! क्या वे यहाँ अम्मा के साथ रह सकेंगे? और गुरु-दीदी पर क्या बीतेगी? कैसे उनका निर्वाह होगा?

"ठीक तो है" वह सोचने लगी—प्रारम्भ में थोड़ी-सी अड़चन मालूम होगी। फिर सब ठीक हो जायगा। एक व्यक्ति के उठ जाने से संसार की गति मे कोई परिवर्तन नहीं उपस्थित होता, दुनियाँ के सारे रंगढंग पहले ही जैसे बने रहते हैं।

अब उसे फिर माँ के उन तमाचो का खयाल हो आया, जो निरपराध होने पर भी वज्र की भाँति उसके मुख पर पड़े थे। उसका हृदय चिता की अग्नि की भाँति धू-धू करके जलने लगा। वह सोचने लगी—इसका ठीक उत्तर मेरा मरण ही है, केवल मरण।

अब मन्दा ने लिहाफ उठाया और वह उठकर बैठ गयी। यद्यपि उस समय भी उसे ज्वर था और कमजोर भी वह पहले की अपेक्षा बहुत हो गयी थी, तो भी वह पलँग से नीचे आकर खड़ी हो गयी। खड़ी होती हुई उसे क्षण-भर को अपनी शक्ति पर सन्देह हुआ। वह सोचने लगी, कहीं वह रास्ते मे ही गिर न पड़े। किन्तु तो भी उसने कदम बढ़ाकर लाइट का स्विच दबा ही दिया। प्रकाश कमरे भर मे फैल गया। उसने पलँग पर, बिस्तर के नीचे, सिरहाने की ओर एक टॉर्च दबा रक्खा था, जिसका अब

उसे खयाल हो आया। तब उसने उसी का प्रकाश जगाकर बिजली का बल्ब बुझा दिया।

इस कमरे के बाद, आगे दूसरे कमरे में ज्ञानप्रकाश सो रहा था, अतएव उसने टॉर्च का प्रकाश उसके बराबर पहुँचते-पहुँचते बुझा दिया। अब उसे मालूम हुआ कि वह गिर पड़ेगी। अतएव उसने खम्भे का सहारा ले लिया। थोड़ी देर तक वह वहीं फर्श पर बैठी रही। इसी समय दूर से उसने देखा, बाबू के कमरे का प्रकाश यकायक बुझ गया है। तब उसे यह सोचकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि चलो यह भी अच्छा ही हुआ। अब वह उसी ओर धीरे-धीरे आगे बढ़कर ठीक उसी कमरे में जा पहुँची, जहाँ ताक में एक शीशी रक्खी हुई थी और जिस पर अँगरेजी में लिखा हुआ था—प्वाइजन Poison। टॉर्च उसके दाएँ हाथ में थी और उसका प्रकाश कमरे के दरवाजे को पार करता हुआ बाहर दालान और सीढ़ियों तक फैला हुआ था। उसने चाहा कि झटपट यहीं इसे पी लेना अधिक अच्छा होगा। तब वह वहीं पड़ी हुई एक टूटी आरामकुरसी पर बैठ गयी। शीशी उसके बायें हाथ में थी। झट से उसने उसका कार्क खोल डाला।

इस समय मन्दा में इतनी शक्ति नहीं रह गयी थी कि वह खड़ी रह सकती। पसीने से वह लथ-पथ हो गयी थी। क्षण-क्षण पर अनेक प्रकार की भावनाएँ उसके मन में आतीं और विनष्ट होती थीं। वह सोचती थी—थोड़ी ही देर में वह इस

लोक की सारी परेशानियों से मुक्त हो जायगी। निरपराध होने पर भी तब कोई उसे डाँटेगा नहीं, उसके मुँह पर कोई इस निर्ममता के साथ प्रहार न करेगा। एक नवल उत्साह से उसका रोम-रोम कम्पित हो रहा था। उसे इस समय इतना भी ज्ञान नहीं था कि कोई इस दशा में कहीं से आते हुए उसे देख भी सकता है। उसे इतना भी ध्यान नहीं था कि सम्भव है, उसका दद्दा ही उसकी गतिविधि का निरीक्षण करता हुआ उधर आ निकले। चारों ओर उस समय जो एक शून्यता व्याप्त हो रही थी, वह उसी में समाहित हो पड़ी। वह सोचने लगी कि बस अभी इस यातना-पूर्ण जीवन से परे जा पहुँचेगी। उसे कुछ देख नहीं पड़ता था, वह कुछ सुन न सकती थी। उसने चाहा कि शीशी ओठों से लगाकर एक ही बार में गट्-गट् करके उसे खाली कर दे। और उस शीशी में उसका मुँह लगने ही वाला था कि उसी क्षण पीछे से एक सुदृढ़ हाथ उसकी कलाई पर जा पड़ा। एक गुरु गम्भीर वाणी में उसे सुनाई पड़ा—"ऐं! यह क्या करती है मन्दा!"

२८

आशा को कार में दाहिने ओर बैठाये हुए दिवाकर उड़ा चला जा रहा था। दो-तीन मिनट तक वह मौन रहा। आशा भी सोच-विचार में लीन रही। वह दिवाकर को जानती थी। उसे पता था

कि वह कितना गिरा हुआ व्यक्ति है। किन्तु उसे अपने आप पर विश्वास था। जब से मन्दा बीमार हुई थी, तब से उसके यहाँ उसका आना-जाना भी बन्द-सा था। इधर कई दिनों से ज्ञान-प्रकाश भी नहीं आ रहा था। उसके यहाँ वह यदि कभी जाती भी थी, तो ज्ञानप्रकाश से उसकी भेंट ही न होती थी। और यदि वह कभी मिल भी जाता, तो वार्तालाप उससे कतई न हो पाता था।

इसका एक कारण था। मन्दा के बीमार होने के दूसरे दिन जब वह उसको देखने गयी, तो रायपत्नी ने उसके प्रति बहुत उपेक्षा प्रदर्शित की। घुमा-फिराकर उन्होंने यह भी कह डाला कि अगर उस दिन मन्दा हठ करके उसे देखने न जाती, घंटों उसके निकट बैठने का उसे अवसर न मिलता, वहाँ आने में देर न होती और तब उसपर मेरा हाथ उठने की नौबत न आती, तो वह कभी बीमार न पड़ती।

किन्तु यह बात तो आशा सहज भी कर सकती थी। इसके अन्दर जो कुछ सचाई थी आशा को उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति न थी। किन्तु रायपत्नी ने इस सिलसिले में एक बात और भी कह डाली थी। उन्होंने कहा था कि जब आशा बीमार पड़ी थी, तब ज्ञानप्रकाश उसे बिला नागा, दोनों वक्त, समय निकाल-कर देखने जाता और डॉक्टर से मिलकर चिकित्सा का उचित प्रबन्ध करता था। परन्तु मन्दा के बीमार होने की उसे कुछ भी परवा नहीं है।

यह ऐसा तीर था, जो आशा के हृदय में बिंध गया था। विष के घूँट की भाँति वह उसे पान कर गयी थी। उसका कोई वश नहीं था। वह कुछ कह न सकती थी। एक आग-सी उसके भीतर सुलगने लगी थी। चाहती थी कि वह उसमें भस्म हो जाय। कई दिन से वह अतिशय उद्विग्न थी। उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। इसीलिए मनोभावों के एक द्वन्द्व के बीच पड़कर, केवल तबियत बदलने के लिए, वह दिवाकर के साथ चली आयी है।

दिवाकर ने आशा के मुख की ओर देखते हुए कहा—कितने दिनों के बाद आज मुझे आपने यह सौभाग्य प्राप्त करने का अवसर दिया!

आशा जरा-सी अस्त-व्यस्त हुई और उसने दिवाकर के हिलते शरीर और उसके बैठने की असावधानी को जो लक्ष्य किया, तो दिवाकर एक ओर कोने में हो रहा। अब वह बोली—मन्दा की तबियत का हाल तो आपने बतलाया नहीं, उलटे भाग्याभाग्य की व्यर्थ चर्चा छेड दी।

दिवाकर बोला—वह अब बिल्कुल अच्छी है। कल ही तो देखा था। ज्वर तो छूट गया है, कमजोरी ही थोड़ी रह गयी है। वह भी दो-चार दिन में ठीक हो जायगी। चिन्ता की कोई बात नहीं है। लेकिन उस दिन से आप तो आयीं नहीं। वह बेचारी नित्य आपको पूछती है!

आशा चुप हो रही, कुछ कह न सकी। एक निःश्वास उसने

ले लिया। उसकी इच्छा हुई कि वह घर लौट जाय। कह दे स्पष्ट रूप से कि मैं आपकी पार्टी में सम्मिलित न हो सकूँगी, मेरी तबियत ठीक नहीं है। किन्तु उसी समय दिवाकर बोल उठा—एक बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं चाहता था कि आप से ही उस सम्बन्ध में पूछूँ: लेकिन अब तक ऐसा अवसर ही नहीं मिला।

तब आशा बोली—क्या बात है? मुझसे कोई ग़लती तो नहीं हो गयी!

इस समय यह, जानबूझकर, उसने अपनी ग़लती की चर्चा कर दी है। केवल मनोरंजन के विचार से। केवल यह लक्ष्य रखकर कि देखें, ये महाशय आख़िरकार पहुँचे कहाँ हैं—कितने गहरे पानी में हैं!

"ग़लती!" आश्चर्य्य से दिवाकर बोल उठा—मैं उसे ग़लती नहीं कहना चाहता। मैं मानता हूँ कि अपने-अपने नाते होते हैं। आपको यह अधिकार है कि चाहें तो मुझसे बातें करें, मेरी ओर एक नज़र डालें और मुझे इतना महत्त्व दें कि मैं आपके निकट खड़ा रह सकूँ। और चाहें तो बात करना दूर रहा, मेरी ओर देखना भी आपको गवारा न हो। मैं तो सिर्फ़ यह जानना चाहता हूँ कि आप मुझसे जो नाराज़ रहती हैं, उसका कारण क्या है।

आशा के ओठों पर इस क्षण मन्द हास झलकने लगा। साड़ी की किनारी को पैर पर ठीक ढंग से रखते हुए वह बोली—

ले लिया। उसकी इच्छा हुई कि वह घर लौट जाय। कह दे स्पष्ट रूप से कि मैं आपकी पार्टी में सम्मिलित न हो सकूँगी, मेरी तबियत ठीक नहीं है। किन्तु उसी समय दिवाकर बोल उठा— एक बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं चाहता था कि आप से ही उस सम्बन्ध में पूछूँ, लेकिन अब तक ऐसा अवसर ही नहीं मिला।

तब आशा बोली—क्या बात है? मुझसे कोई गलती तो नहीं हो गयी!

इस समय यह, जानबूझकर, उसने अपनी गलती की चर्चा कर दी है। केवल मनोरंजन के विचार से। केवल यह लक्ष्य रखकर कि देखें, ये महाशय आखिरकार पहुँचे कहाँ हैं—कितने गहरे पानी में हैं!

"गलती!" आश्चर्य से दिवाकर बोल उठा—मैं उसे गलती नहीं कहना चाहता। मैं मानता हूँ कि अपने-अपने नाते होते हैं। आपको यह अधिकार है कि चाहें तो मुझसे बातें करें, मेरी ओर एक नजर डालें और मुझे इतना महत्त्व दें कि मैं आपके निकट खड़ा रह सकूँ। और चाहें तो बात करना दूर रहा, मेरी ओर देखना भी आपको गवारा न हो। मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि आप मुझसे जो नाराज रहती हैं, उसका कारण क्या है।

आशा के ओठों पर इस क्षण मन्द हास झलकने लगा। साड़ी की किनारी को पैर पर ठीक ढंग से रखते हुए वह बोली—

आपको वहम हो गया है। भला मैं आपसे नाराज क्यों होने लगी ?

"मैं भूला नहीं हूँ मिस आशा" दिवाकर बोला—उस दिन की वात। आपको स्मरण होना चाहिए कि आपने मेरे ही सम्वन्ध मे कहा था—दिवाकर के चलने के ढंग वदल सकते हैं, किन्तु उसकी प्रकृति में कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। इस सम्वन्ध मे मैं आपसे केवल यह जानने का इच्छुक हूँ कि मेरी प्रकृति मे ऐसी कौनसी कटुता है, जिसके कारण आप । मत-लव यह कि मुझमें कौनसा दोप आप देखती हैं ? अपना दोप अपने को मालूम नही होता, इसीलिए मै जरा साफ तौर से इसे समझ लेना चाहता हूँ।

'अपनी गलती' की वात छेड़कर आशा ने जो कल्पना की थी, पहले उसकी सफाई हो नहीं सकी थी। अव यह दूसरा अव-सर था कि आशा फिर एक शतरंज की-सी चाल चल जाय। अतएव उसने कहा, आँखो मे एक नशा-सा लहराकर, ओठों पर हास-माधुरी विखेरते हुए—आप में एक वहुत वड़ा दोप है। उसे सुनकर, मुझे भय है कि आप कहीं, अपनी चेतनता न खो दें।

देखते-देखते अप्रतिभ हो गया दिवाकर। रुद्र-गम्भीर होकर वह वोला—

"ऐसा मोम का पुतला नहीं हूँ आशा। मैं चाहता हूँ, आप जो कुछ कहना चाहें, सर्वथा निर्भय होकर कहें।"

"अच्छा !" कृत्रिम विस्मय से आशा बोली—यह बात है ! तब तो आप वीर पुरुष हैं !

गम्भीर दिवाकर बोल उठा—आप मुझे बना रही है।

तब आशा गम्भीरता से कहने लगी—अच्छा तो जनाब, आप कान खोलकर सुन लीजिये। आप का सबसे बड़ा दोष, आपकी सब से बड़ी कमजोरी, यह है कि आपका सौहार्द बड़ा सस्ता है। मनुष्य होकर आपने कीट- (भ्रमर) वृत्ति का जामा पहन रक्खा है। भक्ष्याभक्ष्य का विवेक आपमे नाममात्र को भी नहीं है। और इस स्थिति तक जो व्यक्ति अपने आपको गिरा सकता है, मै नही जानती कि उसका उत्थान उससे कितनी दूर है।

आशा की यह बात सुनकर दिवाकर अवसन्न हो उठा। उसे स्मरण हो आया कि उसके मित्रो मे कंचन ने भी यही बात एक बार उससे कही थी। तब आज के अनुष्ठान का उसका सारा उत्साह फीका पड़ गया। उसे प्रतीत होने लगा कि दुनियाँ मे कोई भी व्यक्ति ऐसा शायद न मिलेगा, जो मेरे सम्बन्ध मे प्रशंसा की बात सोच सके। सभी की दृष्टि मे मै इतना गया-गुजरा हूँ। उसका मुख उतर गया। ग्लानि से उसका हृदय ओत-प्रोत हो उठा। किन्तु इस स्थिति मे वह अपने आपको अधिक देर तक स्थिर न रख सका। वह सोचने लगा—ऊँह, यह तो दुनियाँ है !

किन्तु आशा को अब अपनी बात पर दुख था। वह तो इस

समय दिवाकर को जरा बनाना चाहती थी। बात का प्रारम्भ भी उसने अच्छे ढंग से किया था। किन्तु उसका हासगर्भित रूप जब स्वतः दिवाकर ने ही भग्न कर दिया, तो वह अपने तत्कालीन लक्ष्य पर दृढ़ न रह सकी। जो भावनाएँ पहले से उसके भीतर स्थान ग्रहण कर चुकी थीं, वे ही अनायास भड़ककर फूट पड़ीं!

मेस्टनरोड वाला पूर्व निश्चित मकान आ गया था। दिवाकर कार से उतरकर आशा को उतारने के लिए उसकी ओर आ गया। आशा उतरकर उसके पीछे हो ली। दोनों मौन थे और चिन्तित। एकबार दिवाकर की इच्छा हो उठी कि वह उसे उसके घर क्यों न भेज आये! और आशा सोच रही थी कि कन्सर्ट-पार्टी मे पहुँचते ही कह दे कि पहले मैं एक चीज सुनाना चाहती हूँ।—यद्यपि वह गाना कतई नहीं जानती थी!

दोनों जब सीढ़ियों पर चढ़ने लगे, तो आशा बोली—मेरी बात का कुछ खयाल न कीजियेगा मिस्टर दिवाकर। वह मेरी अपनी धारणा है। उसमें अतिरंजना भी सम्भव है।

बात कहती हुई आशा सीढ़ी पर खड़ी रह गयी। वह पीछे थी। दिवाकर घूमकर उसकी ओर देखता रह गया। प्रसन्नता में उसका मुख दमकने लगा। उसने कह दिया—आप आगे-आगे चलें मिस आशा और इस अशिष्टता के लिए मुझे क्षमा करें। असल में मैं भूल ही गया कि...।

आशा बोली—चलिये चलिये। फॉरमेलिटी रहने दीजिये।

तरंगित दिवाकर के पैर डगमगा उठे। विहँसते हुए वह कहने लगा—आज मुझे मालूम हुआ, नाम से ही नहीं, रूप और गुण से भी आप आशा है।

खिलखिलाती हुई आशा तब एक सुसज्जित कमरे में जा पहुँची।

तीन

कार पर बैठी आशा जिस समय दिवाकर के साथ बातें करती जा रही थी, ठीक उसी समय ज्ञानप्रकाश ताँगे पर बैठा हुआ डॉक्टर गंगोली के यहाँ जा रहा था। हेड पोस्टआफिस के निकट, सिविल-लाइन के पट्-पथ केन्द्र पर, एक ओर दिवाकर की कार मेस्टनरोड की ओर घूम पड़ी, दूसरी ओर ज्ञानप्रकाश का ताँगा क्राइस्टचर्च की ओर बढ़ गया। आशा की एक क्षीण झलक उसे दृष्टिगत हुई, उसने चाहा भी कि वह शोफर से कार रोकने का संकेतकर आशा से दो बातें कर ले, किन्तु कुछ सोचकर वह फिर रुक गया, कुछ बोला नहीं और आगे बढ़ गया।

इस समय बार-बार उसे आशा के ये शब्द याद आ रहे थे—"मैं भला आपसे नाराज क्यों होने लगी?" और इन शब्दों को लेकर उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे भूकम्प आ गया है पृथ्वी हिल रही है और ताँगा उलटने ही वाला है, यहाँ तक कि मेरे धराशायी होने में देर नहीं है।

लता अन्यमनस्क बैठी है। कभी वह कोई पुस्तक उठा लेती और कभी उसे यथास्थान रखकर, ऊपर के कमरे में खिड़की से लगकर जा बैठती है। चिड़ियों की पंक्ति-की-पंक्ति पश्चिम की ओर उड़ी चली जा रही है। वह उन्हें गिनना चाहती है, किन्तु गिन नहीं सकती। उड़ते हुए उन पक्षियों का पंख फैलाकर प्रवाह की नाईं बढ़ते जाना उसे बड़ा प्यारा मालूम होता है। वह सोचती है—काश मैं भी इसी तरह उड़ सकती!

अब प्रकाश क्षीण होने लगा है। अन्धकार छाया के गले में हाथ डालकर इधर ही बढ़ता चला आ रहा है। छाया प्रकाश की होकर भी अन्धकार के साथ-साथ चलती है। प्रकाश को क्षीण पाकर वह अन्धकार में ही समापन्न हो जाती है।

लता प्रकाश के रहते अपने साथ छाया को देखती है। किन्तु उसके तिरोहित होते ही वह अनुभव करने लगती है कि उसकी दृष्टि के नीचे छाया नहीं है, अन्धकार है।

आज इस समय लता स्पष्ट अनुभव कर रही है कि वह अन्धकार से घिरी हुई है। प्रकाश उससे दूर है, बड़ी दूर है। और वह जो दिवाकर बनता है, वह तो पूरा-का-पूरा अन्धकार है।

"लेकिन दिदिया आज उसीके साथ चली गयी! बापरे!" लता सोचने लगी—इस दिवाकर का क्या ठिकाना!

लता के भीतर एक शैतान है। वह इस समय मुसकरा रहा है। वह हँसना चाहता है, गाना चाहता है। तभी लता इस समय

अत्यधिक प्रसन्न है। वह सोचती है, क्या ही अच्छा हो, अगर ज्ञानप्रकाश बाबू को इसका पता लग जाय। वह यह भी सोचती है कि इससे भी अच्छा यह हो कि आज दिवाकर अपने यथार्थ स्वरूप का परिचय दिये बिना न माने!

लता डोलने लगी, झूलने लगी, पवन की मन्द-मन्द लोरियों से उसका लोम-लोम जैसे सिहर उठा!

और ठीक इसी क्षण वहाँ जा पहुँचा ज्ञानप्रकाश। उसने कुण्डी खटखटाई और ज़ोर से पुकारा—अम्मा...अम्मा।

जानकी ने किवाड़ खोल दिये। द्वार से लगकर वह बोली—आओ बेटा। चलो। कई दिन से तुम आये नहीं, उस दिन दोपहर को जो आये भी, तो मैं तपेश्वरी देवी का दर्शन करने चली गयी थी।

दोनो अन्दर चलने लगे।

जानकी ने पूछा—मन्दा की तबियत अब कैसी है?

"अच्छी नहीं है अम्मा" ज्ञानप्रकाश कहकर चुप हो गया।

जानकी बोली—उधर निकल चलो, बैठक में। दिवाकर नहीं माना, उसे कहीं किसी गाने की पार्टी में लिवा ले गया है। अरी लता, देख, ज्ञानूबाबू आये है।

लता दौड़ पडी। उसने चाहा कि वह अविलम्ब वहाँ जा पहुँचे। किन्तु जल्दी में वह जो सीढ़ी से उतरने लगी, तो अन्तिम सीढ़ी से चार सीढ़ी पूर्व पहुँचती-पहुँचती धड़धड़ाती हुई नीचे जा गिरी। फिर उसका सीढ़ी के दरवाज़े की चौखट पर जा

पड़ा और उसकी कोर से क्षत-विक्षत हो गया। फल्ल से रक्त निकल पडा।

ज्ञानप्रकाश ने झट से आकर उसका सिर थाम लिया. जानकी ने कमर के नीचे हाथ लगाकर जो लता को उठाना चाहा, तो ज्ञानप्रकाश ने अनुभव किया. अशक्त होने के कारण वे उसे उठा सकने मे सर्वथा असमर्थ हैं। तब बिना किसी प्रकार का अन्य विचार किये ज्ञानप्रकाश ने कहा—तुमसे उठाते न बनेगा अम्मा। मैं उठाये लेता हूँ। तुम पलॅग बिछा दो झट से।

एक हाथ ज्ञानप्रकाश ने लता की जंघाओ के नीचे डाला; दूसरा उसकी गर्दन में। और झट से उसे उछालकर जानकी के संकेत पर अन्दर जाकर पलॅग पर लिटा दिया। जानकी ने बिजली का बटन दबा दिया।

लता के सिर से खून अब भी बराबर झर-झर गिर रहा था।

ज्ञानप्रकाश बोला—मै डॉक्टर बुला लाऊँ। और वह झट से मकान के बाहर आकर ताँगे पर बैठ गया। नौकर से बोला—पास ही जो भी डाक्टर मिले. ले आना है। लता सीढ़ी से गिर पड़ी है। सिर मे घाव हो गया है।

इस समय उसको लता की वे बातें याद आ रही थी। 'गिरा अनयन नयन बिनु बाणी' चौपाई की बात पर उसने विवाद

किया था। मेरे व्याख्या करने पर वह बोली थी—"और भी कुछ कहिये, कहते जाइये। मैं बराबर सुनती ही रहना चाहती हूँ।"

वह सोचने लगा—उसने घड़ी भर में बात बदल दी थी। पहले वह बोली थी—आशा ऊपर सो रही है। इस पर जब मैं ऊपर ही जाने को तत्पर हो गया, तो उसने कहा था—वे तो अम्मा के साथ गयी हैं।—तो इस लता के भीतर प्रमाद ने स्थान ग्रहण कर लिया है। लेकिन यह प्रमाद उत्पन्न कहाँ से हुआ?

अवसन्न हो उठा वह। क्या करे अब? एक ठहरा मन, किसको-किसको बाँटता फिरे?

इसी समय आशा उसके सामने, उसके कल्पना-लोक में, आ खड़ी हुई—दुबली-पतली, किन्तु हँसती सुमन-सी, जीवन के मधुर राग-सी, निर्झर के कल-कल नाद-सी। किन्तु वह दिवाकर के साथ . !

पर इसी समय उसने एक ओर देखकर कहा—ठहरो, और वह तुरन्त ताँगे से उतरकर डॉक्टर त्रिवेदी के यहाँ जा पहुँचा। भीतर प्रवेश करते ही बोला—कृपा करके अभी मेरे साथ चले चलिए। एक लड़की गिर पड़ी है ज़ीने से। सर में गहरा घाव हो गया है। रक्त अब भी बह रहा है। अचेत पड़ी है वह।

लता जिस क्षण पैर फिसलने के कारण गिरी था, उसके पूर्व वह बहुत तरंगित थी। उसके बाद जब वह लुढ़कती हुई चौखट पर जा गिरी, उस समय उसकी चेतनता कुछ क्षीण हो रही थी।

एकायक सिर में जोर की चोट आने से वह अवसन्न पड़ गयी थी। उसमें बोलने की शक्ति नहीं थी। वह उठ नहीं सकती थी, रक्तस्राव होते हुए उसे ऐसा जान पड़ता था, मानों उसकी जीवनी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण—क्षीणतम—होती जा रही है। किन्तु उसे अपनी एक अत्यन्त धुँधली स्मृति थी। चोट अधिक गहरी नहीं थी। पीड़ा भी उसके सिर में थी; किन्तु ऐसी नहीं थी कि सम्पूर्ण चेतनता उससे दूर चली जा सके। जिस समय उसकी माँ ने उसे उठाने की चेष्टा की, उस समय भी उसे यत्किंचित अपना ज्ञान था, फिर जब ज्ञानप्रकाश अकेला उसे उठाकर ले चला, तब भी उसे इतना बोध था कि ये बलिष्ठ हाथ किसके हैं, किन्तु रक्त बराबर बहते रहने के कारण पलँग पर पहुँचते-पहुँचते वह सर्वथा अचेत हो गयी थी।

डाक्टर त्रिवेदी तुरन्त ज्ञानप्रकाश के साथ चल दिये। उनकी अपनी कार थी। ज्ञानप्रकाश भी उसी पर बैठ गया। कम्पाउण्डर बैण्डेज, लोशन, गाज तथा क़ैंची और चाकू आदि सामग्रियाँ लेकर आगे बैठ गया।

ज्ञानप्रकाश जब डॉक्टर को लेकर चल दिया, तो उसके मन में आया—लता आखिर गिरी क्यों? ऐसा तो नहीं हुआ कि दो-तीन सीढ़ियाँ शेष रह जाने पर वह आप-से-आप गिर पड़ी हो! उसने सोचा हो, उस तरह न सही, पर इस तरह तो उन्हें इस समय मुझे सम्हालना ही पड़ेगा। वह ज़िन्दगी भी क्या,

उसी समय आशा उसकी कार पर घर जाती हुई देख पड़ी। ज्ञानप्रकाश ने इस बार भी देखा, दिवाकर उसके साथ बगल में बैठा है। पर इस बार भी उसने आशा को रोकने की कोई चेष्टा नहीं की।

उधर इस बार जब ज्ञानप्रकाश डॉक्टर साहब के यहाँ चल दिया, तो लता ने आँखें खोल दीं। जानकी उसके पास ही बैठी थी। मुनिया भी आ गयी थी। क्षीण स्वर में लता ने कहा—अम्मा! और वह दृष्टि घुमाती हुई किसी को खोजने लगी।

जानकी बहुत घबरा गयी थी। वह बराबर यही सोच रही थी कि अगर आशा को दिवाकर अपने साथ न ले जाता, तो यह दुर्घटना कदापि न होती। उसे अपने पति की भी याद हो आयी। वह बहुत देर तक रोती भी रही। इस समय जब लता ने आँखें खोलकर कहा—अम्मा; तो पुन: उसका कण्ठ भर आया। वह बोली—कैसी तबियत है लता!—और उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

लता बोली—बड़ा दर्द है।

इसी समय दिवाकर के साथ आशा ने प्रवेश किया। लता को इस दशा में देखकर वह घबरा गयी। जानकी ने भीगी आँखों और आर्द्र कण्ठ से दुर्घटना की सारी कथा कह सुनायी। अन्त में उसने यह भी कहा कि अगर उस समय ज्ञानू यहाँ न होता, तो मैं कुछ भी कर न सकती! कितने दुर्भाग्य की बात है!

आशा बोली—डाक्टर त्रिवेदी। वे इस गली से आगे बढ़ते ही सड़क पर मिलेंगे।

दिवाकर जाने लगा। आशा बोली—डॉक्टर के यहाँ से लौटकर यहाँ होते हुए जाइएगा। पर दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप चला गया। आशा पास ही कुर्सी डालकर बैठ गयी। उसकी दृष्टि अब लता के मुख पर थी।

जानकी बोली—अगर मैं जानती कि तेरे जाने पर यह विपत्ति फट पड़ेगी, तो मैं दिवाकर के साथ जाने के लिए कभी तुझपर जोर न देती। मेरे ही कारण यह विपत्ति आयी है। मैं बड़ी अभागिन हूँ।

अन्तिम शब्द कहते-कहते जानकी फिर रो पड़ी!

आशा बोली—रोओ मत अम्मा। रोने से लता की तबियत और भी खराब हो जायगी। तुम घबड़ाओ मत। वह जल्दी ही अच्छी हो जायगी।

लता ने फिर आँखें खोलनी चाहीं; किन्तु एक बार पलक जरा से खुले और फिर मुँद गये।

इसी समय ज्ञानप्रकाश आकर दूसरी ओर खड़ा हो गया। आशा की ओर उसने देखा तक नहीं। जानकी को ही सम्बोधन करके बोला—इस समय आठ बजा है। सबेरे आठ बजे तक पिलाने के लिए इसमें छै खुराकें हैं। दो-दो घंटे बाद दी

जायँगी। अगर लता सोती रहे, तो न देना। आराम ही उसकी दवा है, उस समय की।

इसके बाद उसने लता के बगल में थर्मामीटर लगाने के लिए जानकी से कहा—अम्मा, जम्पर और बॉडिस ज़रा-सा यहाँ खोलना होगा। इस समय मुँह में थर्मामीटर लगाना ठीक नहीं जान पड़ता।

आशा ने चाहा कि वह कह दे—आप ज़रा-सा हट जाइये। मैं लगाये देती हूँ। किन्तु वह कुछ बोल न सकी। केवल मौन बनी रही। जम्पर और बॉडिस का वह भाग खोलने के लिए उस ओर गयी भी नहीं। केवल ज्ञानप्रकाश की ओर देखती रही, उसकी आँखों की भाषा, भाल की रेखा और ओठों की गति-विधि की ओर ही उसका ध्यान केन्द्रित हो गया।

जानकी ने जम्पर को एक ओर बाँह से निकाल दिया। फिर बॉडिस की तनी के बन्द खोल दिये। ज्ञानप्रकाश ने झट लता का एक हाथ उठाकर उसकी बगल में थर्मामीटर रखते हुए उस हाथ को भी कमर से लगा दिया।

इस समय ज्ञानप्रकाश की दृष्टि केवल अपनी कलाई-घड़ी की ओर थी। टकटकी लगाकर वह केवल एक सुई को ही देख रहा था। एक मिनट बाद उसने थर्मामीटर निकाल लिया और ज्वलन्त प्रकाश के निकट जाकर कहा—हण्ड्रेड प्वाइन्ट फाइव। तदन्तर उस थर्मामीटर को उसने जेब में रख लिया।

अब एक बार उसने आशा को देखा. चाहा कि पूछे—दिवाकर को कहाँ छोड़ दिया ? किन्तु अपने मन में ही वह यह प्रश्न करके रह गया, कुछ बोला नहीं।

जानकी बोली—अभी तो तुमको डॉक्टर गंगोली के यहाँ जाना है।

ज्ञानप्रकाश चलने लगा। चलते हुए ही उसने कह दिया —वहीं जा रहा हूँ। लौटते हुए डाक्टर त्रिवेदी से फिर मिल लूँगा। कोई ख़ास बात होगी, तो फिर एक बार आकर कह जाऊँगा। वैसे कोई चिन्ता की बात नहीं है। लता शायद सो रही है।

वह द्वार की ओर बढ़ा ही था कि लता ने आँखें खोल दीं। इधर-उधर एक बार उसकी पुतलियाँ घूमीं और वह बोली—आः कहाँ जाते हो ?

ज्ञानप्रकाश लौट पड़ा। बोला—अब मन्दा के लिए दवा लेने जाना है लता। तुम अब चुपचाप लेटी रहो। बँगले पर पहुँचते ही मैं अपना ग्रामोफोन भेज दूँगा। मज़े से गाना सुनना और सो जाना। और हाँ, एक बात मैं कहना भूल ही गया अम्मा। कुनकुना दूध वह जितना पी सके, पिला देना। मैं कल सवेरे आऊँगा।

बस. इतना कहने के साथ ही ज्ञानप्रकाश चला गया। चलते हुए एक बार आशा की ओर भी एक दृष्टि उसकी पड़ ही गयी।

आशा की मुद्रा म्लान थी। अनेक प्रकार की भावनाएँ उसके भीतर तुमुलनाद कर रही थीं।

तीन

उस सजे हुए कमरे में पहुँचकर आशा एक कोच पर जा बैठी। दिवाकर उसके सामने बैठ गया। बीच में एक गोल टेबिल रक्खी हुई थी। इसी समय वेटर परदे में आकर दिवाकर के सामने खड़ा हो गया।

दिवाकर ने एक बार आशा की ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देखा। फिर उसने कहा—चाय, आमलेट और मटन चॉप।

आशा कुछ अस्तव्यस्त हुई। बोली—मुझे इन चीजों के लिए माफ कीजिए। मैं।

विस्मय के साथ अनुरोध करते हुए दिवाकर बोला—इस बीसवीं सदी में भी इन चीजों से परहेज करती हो! मैं तो तुम्हें बहुत कल्चर्ड समझता हूँ!

वेटर आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

आशा बोली—कल्चर और चीज है मिस्टर दिवाकर। भक्ष्याभक्ष्य का विवेक एकदम त्याग देने मात्र से कोई व्यक्ति जैसे कल्चर्ड नहीं बन सकता, वैसे ही उसका भेदाभेद स्वीकार करने से ही वह कल्चर से दूर नहीं चला जाता! लेकिन यहाँ

आप की पार्टीवाले तो मुझे कहीं देख नहीं पड़ते ! मैं तो सोचती थी कि सीढ़ी पर पैर रखते ही मुझे वायोलिन की मधुर झंकार सुनाई देगी।

दिवाकर बोला—तुम जाओ ब्वाय। और देखो, दो ग्लास ड्रिंक भी ज़रूर।

आशा उठकर खड़ी हो गयी। बोली—तो आप मुझे जलील करने के लिए ही छल से यहाँ ले आये हैं !

हँसते हुए दिवाकर बोला—बैठो आशा। अभी एक दम से नाराज़ मत हो जाओ। थोड़ी देर बाद चाहे तो एक साथ नाराज़ हो लेना। कितने दिनों से मैं अंगारों के साथ खेल रहा हूँ, तुमको क्या इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है ? यहाँ तुम बहुत सुरक्षित दशा में हो। मैं इस अवसर पर सब से पहले तुमसे यह कह देना चाहता हूँ कि मैं ज्ञानप्रकाश नहीं हूँ, न मैं किसी सम्भ्रान्त रमणी के साथ कोई ज्यादती कर सकता हूँ। मैं तो एक मात्र पुजारी हूँ सौन्दर्य का। सौन्दर्य की उपासना ही मेरा धर्म है। तुम कभी मिलती नहीं थीं, तुमसे बात तक करना तुम्हें स्वीकार नहीं था। तभी लता को राज़ी करके मैं तुमको यहाँ ला सकने में समर्थ हुआ। तुम को मालूम होना चाहिए कि लता मेरी है, वह मुझ पर जान देती है। मैं चाहता, तो अब तक वह कहीं-की-कहीं जा पहुँचती। किन्तु मैंने पहले ही कह दिया कि मैं कोई ऐसा काम नहीं करना चाहता, जिससे मेरे द्वारा किसी की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचे। इससे

मेरा तिरस्कार करो, अपमान करो, जहर खिलाकर मार डालो, या जड़ ही कर दो. मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हँसी-खुशी के साथ मैं तुम्हारे लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को तैयार हूँ। तुम्हारे एक संकेत मात्र पर मैं अपने जीवन का सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर हूँ। तुम्हारे इन चरणों की धूलि मेरे भाल की विभूति है। तुम मेरी देवी हो, मेरे जीवन और प्राण की एक मात्र अधीश्वरी। बोलो, मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ? एक बार मेरी भी परीक्षा कर लो—देख लो, मैं क्या हूँ।

इसी समय वेटर ने आकर अलग-अलग प्लेट्स में सारे पदार्थ रख दिये। दो रंगीन गिलासों मे वह पेय पदार्थ भी आ गया, जिसके ऊपर इस समय शरबती रंग का फेन उबल रहा था और जिससे एक मधुर और मादक सुवास लहरा रही थी।

आन्दोलित आशा बोली—और कुछ तो नहीं कहना है?

वह अत्यन्त गम्भीर थी। वह जानती थी, दिवाकर आदि से अन्त तक जो कुछ भी कह गया है, उसमें सचाई का सर्वथा अभाव है। वह यह भी समझती थी कि गम्भीरता उसके कथन मे छू भी नही गयी है। किन्तु ज्ञानप्रकाश और लता के सम्बन्ध मे जो कुछ दिवाकर ने कहा, उसको सुनकर एक बार उसका हृदय हिल गया। वह सोचने लगी, सम्भव है, दिवाकर का कथन यथार्थ हो।

यहाँ आशा दिवाकर के कथन मे सम्भव होने जा रहे वक्तव्य

से जो प्रभावित होती जा रही है, उसका एक कारण और भी हो सकता है। आशा निश्छल नारी है। कपट करना वह नहीं जानती। किन्तु किसी के सम्बन्ध में जब वह कपट की बात सुनती है, तो उसे बड़ा क्षोभ होता है। कपट को वह मनुष्य की मन मे बड़ी कमजोरी मानती है। कपटी आदमी के प्रति घृणा से उसका हृदय भर जाता है। लता दिवाकर से प्रभावित है, उसका परिचय वह एक बार पा चुकी है। वह यह भी जान चुकी है कि लता भावुक है, और भावुकता में बहकर वह झट से कहाँ-की-कहाँ जा पहुँचती है। आज ही उसने दिवाकर को डाँट बता दी है। किन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि वह वास्तव में उससे घृणा रखती है। यही बात वह ज्ञानप्रकाश के सम्बन्ध मे सदा सोचती आ रही है। उसने कभी उस पर अविश्वास नहीं किया। वह जानती है कि वह एक ओर अत्यन्त भावुक है, दूसरी ओर अत्यन्त कर्तव्यनिष्ठ। इधर अनेक दिनों से उससे मिलने-जुलने और विचार-विनिमय करने का उसे जो अवसर नहीं मिला है, उसका कारण यह नहीं है कि उसका भाव इसके प्रति कुछ बदल गया है। मन्दा के बीमार हो जाने के कारण वह व्यस्त बहुत रहता है। किन्तु लता को उसने जो उपहार भेंट करने प्रारम्भ कर दिये हैं, इसकी ओर उसका ध्यान अभी तक नहीं गया था। फाउन्टेनपेन जिस समय उसने उसे दिया था, उस समय भी उसने कोई दूसरी बात नहीं

दो। संसार में जो कुछ भी सुन्दर और लाभदायक, मधुर और सलोना, रुचिकर और उपयोगी है वह सब मनुष्य के इसी जीवन के लिए बना है। प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह जो कुछ भी प्राप्य और सुलभ है, उसे ग्रहण करता चले। बिना देखे और अनुभव किये परम्पराओं और रूढ़ियों की लकीर पीटकर यह कहते रहना मनुष्य की सब से बड़ी अमौलिकता और व्यर्थता है कि अमुक वस्तु हेय है अथवा श्रेय। मैं कहता हूँ, इन पदार्थों को एक बार चखकर देखो, अनुभव करके बतलाओ कि वे कैसी है और उनमे क्या गुण-दोष हैं!

दिवाकर ने खाना प्रारम्भ कर दिया था। आशा भी चाय पीती जाती थी। दिवाकर प्रत्येक बात कहते समय आशा की भाव-भंगी देखता जाता था। उसे बराबर इसका ज्ञान होता जा रहा था कि मेरी बात का उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। उसने जब उपर्युक्त बात समाप्त की, तो आशा ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब दिवाकर ने समझ लिया कि आशा पर उसकी बात का प्रभाव पड़ रहा है। अतएव फिर उसने कहा—अगर तुमको इस सुरा से आपत्ति है, तो इसे न ग्रहण करो। लेकिन ये अन्य पदार्थ तो ऐसे नहीं है कि इनके प्रति तुम अपनी विरक्ति ही स्थिर रक्खो।

आशा बोली—इस समय आप मुझे क्षमा करें मिस्टर दिवाकर। मेरा ज्ञान मुझे सहयोग नहीं दे रहा है। कम-से-कम

मुझे इतना अवसर तो आप दे कि आपके इस दृष्टिकोण को एक बार आदि से अन्त तक मै समझ तो लूँ। इस समय तो मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो मैं बावली हो जाऊँगी। अभी तक मुझे सचमुच आपका कोई परिचय नहीं था। आज और अभी-अभी मैं इतना जान सकी कि आप क्या चीज हैं। आप भले हैं कि बुरे, मै यह नहीं जानती। लेकिन इतनी देर मे मैं इतना तो निश्चय-पूर्वक कह सकती हूँ कि अपने दृष्टिकोण के अनुसार आप बहुत सफल व्यक्ति है। मै आप के व्यक्तित्व की प्रशंसा करती हूँ। आपने आज कुछ बाते ऐसी कही हैं, जिनके सम्बन्ध मे मुझे विचार करना पड़ेगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि अब तक मैं अँधेरे मे रही हूँ। मुझे आपने दिग्भ्रम में डाल दिया है। कह नहीं सकती, मैं कहाँ हूँ। ऐसे समय मुझे अपनी माँ के पास रहने की आवश्यकता है। मेरा सिर दर्द कर रहा है। पिछले दिनों मैं बीमार थी। कहीं फिर मै बीमार न पड़ जाऊँ। आप कृपा करके मुझे इसी समय घर पहुँचा दे।

"मै अभी थोड़ी देर मे आप को घर पहुँचा आऊँगा" अत्यन्त प्रसन्न होकर दिवाकर बोला—पर इन प्लेट्स को साफ कर दूँ, तब। मुझे अफसोस है, आपने इनको चखना तक स्वीकार नहीं किया। लेकिन मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरा कुछ मूल्य आपकी दृष्टि मे अंकित हुआ। परन्तु यदि वास्तव मे आपको किसी प्रकार की बेचैनी का अनुभव हो रहा है, तो मैं आपसे एक

बार और यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि आप इस पेय पदार्थ को कम-से-कम आधा तो अवश्य पी लें। आपको मैं विश्वास दिलाता हूँ कि पीते-पीते यह आपको एक नवल स्फूर्ति प्रदान करेगा।

"आप मुझे पागल कर डालेंगे मिस्टर दिवाकर!" कहती हुई विचलित आशा उसकी ओर देखने लगी। उसे प्रतीत हुआ, मानो पृथ्वी हिल रही है, कमरा उलट रहा है और दीवारें उसके ऊपर गिरना ही चाहती हैं!

दिवाकर आशा के भाव-परिवर्तन को ध्यान से देख रहा था। क्षण-क्षण उसके लिए कितने अकल्पित आनन्द का है, बार-बार अतिरंजना के साथ अनुभव करता हुआ वह सोचने लगता—वह अपने अणु-अणु को आज आशा के आगे सदा के लिए समर्पित कर देगा। अपना कहलाने के लिए वह अपने पास कुछ न रक्खेगा।

यकायक खाना उसने बन्द कर दिया। दूसरे गिलास को उठाकर वह उसे भी पीने के लिए होठों से लगाने जा ही रहा था कि आशा ने उसके गिलास से हाथ लगा दिया। दिवाकर तब उसकी ओर देखता रह गया, विवश-सा, पराजित-सा—विस्मय-विमूढ़-सा। इसी निमेष में आशा बोली—बस दिवाकर, आज के इस क्षण से मैं आपको इस रूप में नहीं देखना चाहती। मैं चाहती हूँ कि आप अब अपने आपको सदा के लिए बदल डालें।

गिलास दिवाकर के हाथ से छूटना ही चाहता था कि आशा ने उसे सावधानी के साथ, पूर्ववत्, टेबिल पर रख दिया।

दिवाकर मन्त्र-मुग्ध-सा हो उठा। उससे कुछ कहते न बना। उसके मुँह से केवल एक शब्द निकला "आशा—"! उसने इस समय आशा को इस प्रकार देखा, जैसे उसके द्वारा उसकी आत्मा का सारा कलुष इसी क्षण मे धुल जाना चाहता है। आशा भी उसकी आँखों की भाषा हृदयङ्गम करने के लिए तत्पर हो पड़ी। वह बोली—तुमने अब तक वही किया है, जो तुम्हारे मन मे आया है। उचित-अनुचित का ध्यान तुम्हे कभी नहीं रहा। मै चाहती हूँ, आज से तुमको मैं दूसरे ही रूप मे पाऊँ। बोलो, क्या कहते हो?

तब विदग्ध वाणी मे दिवाकर बोल उठा—किसके लिए आशा? तुम जानती हो, मैंने अब तक किसी को अपने हृदय के साथ खेलते हुए नहीं पाया। मै नहीं जानता, प्यार कैसा होता है। चारो ओर मुझे केवल लाञ्छना, केवल तिरस्कार ही तो मिला है। आज जीवन में पहली बार आशा की एक ज्योति मुझे देख पड़ी है। मै जानता हूँ, वह मेरी नहीं है। मै यह भी जानता हूँ, वह मेरी हो भी नहीं सकती। तब किस आधार पर तुम मुझे परिवर्तित रूप मे देखना चाहती हो!

आशा को ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे वह बैठी रह न सकेगी। उसका शरीर झुकने जा रहा है, वह अचेत हो जायगी।

उसे अपना ज्ञान न रहेगा वह अपने को खो देगी और अपनी आत्मा के कोण-कोण को प्रक्षिप्त कर डालेगी।

किन्तु इसी क्षण उसने दिवाकर को अच्छी तरह से टटोलने की दृष्टि से पूछा—मेरी देह पर हाथ रखकर शपथ लेकर मुझे बतलाओ कि क्या वास्तव में ज्ञानप्रकाश लता को चाहते हैं? मैं कुछ भी बुरा न मानूँगी। लता को बहिन के रूप मे न देखकर मैं अपनी पुत्री के रूप में देखती हूँ। मैं नहीं जानती, संसार में उससे अधिक मेरे लिए कोई प्यारा है। यदि वास्तव में तुम्हारा कथन यथार्थ हो, तो ..। मैं कुछ कह नहीं सकती दिवाकर। मुझे ऐसा जान पड़ता है—मैं पागल हो जाऊँगी।

एक बार इस समय दिवाकर के मन में आया कि वह झूठ ही बोल जाय।—और तब उसका रास्ता साफ होते देर न लगेगी। सफलता की इस पावन घड़ी को वह अपने आगे से क्यों टलने दे? किन्तु दिवाकर अनगलतिका-सी उस नारी की आँखों मे जागरण का एक संदेश देखते-देखते अपने प्रति एक दुर्निवार घृणा से ओत-प्रोत हो उठा। उसकी आँखें जान पड़ा, बाहर निकल आना चाहती है। उसके मुख की आभा एकदम से ज्योतिर्मय हो उठी। एक ओर उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो आशा के सामने इस समय असत्य बोलकर वह अपने कलेजे में छुरी भोंक लेगा। दूसरी ओर उसके मन मे आया—कुछ नहीं है यह जगत्। सत्य और असत्य भी जीवन के सामने कुछ नहीं हैं।

तुम तो आज मुझे दूसरी ओर ले जाना चाहती हो ! मैं जानना चाहता हूँ, तुम ऐसा क्यों चाहती हो ?

उस समय विस्मय-विस्फारित दृष्टि से आशा दिवाकर को देख रही थी। झट से वह बोली—एक दिन था, जब तुमसे बातें करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन था। मैं तुमसे ही नहीं, तुम्हारी छाया तक से डरती थी। किन्तु आज मैं कुछ और देख रही हूँ। मुझे स्पष्ट जान पड़ता है, एक दिन तुम आदमी बनोगे। संसार का प्रत्येक प्राणी तुम्हें आदर की दृष्टि से देखेगा। सत्य से दूर जाकर तुम जीवन से भी दूर चले गये थे। किन्तु आज मुझे यह विश्वास हो रहा है कि तुममे मनुष्यता की वह दीप्ति यथेष्ट मात्रा में है, जिससे तुम चाहो तो इस जगत् के लिए देवता बन सकते हो !

दिवाकर कुछ बोल नहीं सका। सड़क की ओर के बराण्डे मे आकर वह टहलने लगा। आशा ने देखा, बड़ी देर हो गयी है। आठ बजने जा रहा है। तब वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

इसी क्षण दिवाकर बोला—चलो आशा तुम्हें घर पहुँचा आयें।

दोनों सीढ़ियों से उतरने लगे। दिवाकर प्रत्येक सीढ़ी उतरते क्षण अनुभव करने लगा—कहीं मै गिर न पड़ूँ। तब वह बीच मे एक सीढी पर बैठ गया।

आशा ने लक्ष्य किया, सीढी का द्वार बन्द है। उसे कुछ आश्चर्य्य हुआ। उसने दिवाकर की ओर देखकर कहा—अरे, तुम तो बैठ गये ! उठो, चलो।

दिवाकर बोला—मुझे यहीं छोड़ दो आशा। कार बाहर खड़ी है। तुम उस पर चली जाओ। मैं चल नहीं सकता। मेरी तबियत ठीक नहीं है। मेरा पैर आगे नहीं बढ़ रहा है। मुझे माफ कर दो, छोड़ दो मुझे !

"यह नहीं हो सकता।" आशा बोली—तुम्हें उठना पड़ेगा, चलना पड़ेगा। उठो, उठो तो । उसने दिवाकर का हाथ पकड़ लिया।

दिवाकर उठा और उसने आशा के कन्धे पर हाथ रख लिया। वह सीढ़ियों से उतरने लगा। आशा ने चाहा कि वह दिवाकर का हाथ अपने कन्धे से हटा दे, किन्तु जानबूझकर उसने ऐसा नहीं किया। तब दिवाकर ने अपना हाथ उस कन्धे से आगे बढ़ाकर उसके गले में डाल दिया। आशा ने तब भी कोई आपत्ति नहीं की। किन्तु उसी क्षण दिवाकर ने स्वतः ही अपना हाथ हटा लिया। अब आगे अन्तिम सीढ़ी थी और उसके बाद बन्द द्वार। दिवाकर ने सिटकिनी खोलने के लिए हाथ ऊपर उठाया तो आशा ने लक्ष्य किया, बाहर से कुछ खटपट हुआ है। उसकी आशंका उभड़ ही रही थी कि द्वार खुलने पर जब वह बाहर आई, तो उसने देखा, एक आदमी हाथ में ताला लिये खड़ा है।

दोनों कार में बैठने लगे। बैठते समय आशा ने देखा, दरवाजे में ताला लटक रहा है और वह आदमी बढ़ा जा रहा है, वह !

विस्मय-विमूढ़ होकर आशा तब थोड़ी देर तक दिवाकर के म्लान तथा खिन्न मुख को देखती रह गयी, कुछ बोली नहीं।

तेरह

मन्दा की कलाई पर अकस्मात् जा पड़नेवाला वह हाथ रायसाहब का था। उस दिन, उतनी रात तक वे सो नहीं सके थे। नौ बजे तक तो उनकी बैठक ही जमी रही थी। उनके मित्रों में से एक बाबू रघुनाथप्रसाद कर्मयोग के सम्बन्ध में उनसे बात-चीत करते रहे थे। उसके बाद बड़ी देर तक वे कमरे में चुपचाप टहलते रहे। फिर आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे थोड़ी देर तक गीता-रहस्य देखते रहे। अन्य दिनों की अपेक्षा आज वे कुछ अधिक गम्भीर थे। आज फिर उन्होंने अनेक प्रकार की बातें सोच डालीं। सबसे पहले उन्होंने मन्दा के सम्बन्ध में सोचा। अपने आपसे ही पूछने लगे—मेरी समझ में नहीं आता कि वह अकस्मात् इतनी बीमार कैसे पड़ गयी !

किवाड़ उन्होंने बन्द कर लिये थे। मन्दा जिस कमरे में थी, वह रायसाहब के इस कमरे के सामने एक कोने में पड़ता था। किवाड़ के शीशों से उन्हें वातावरण का पता चलता रहता था। उस कमरे के अन्धकार को लक्ष्यकर वे जान लेते थे कि मन्दा सो रही है। वे अभी टहल ही रहे थे कि यकायक उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो मन्दा सो गयी है;

क्योंकि उस कमरे की ओर अन्धकार छा गया था। 'चलो अब वह सो गयी' यह सोचकर वे निश्चिन्त-से हो गये। किन्तु थोड़ी देर के बाद उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई टॉर्च लिये हुए उस कमरे से निकला है। उन्होंने स्पष्ट देखा कि वह व्यक्ति दीवाल और खम्भे का सहारा लिये चल रहा है। एक भयानक आशंका से वे अभिभूत हो उठे। ऊनी कमीज़ उनके बदन पर थी, जिसके ऊपर वे पुलोवर पहने हुए थे। शाल उठाकर वे चुपचाप अपने कमरे से निकलकर बाहर आ गये। जैसे-जैसे मन्दा दूसरे कमरे की ओर बढ़ने लगी, वैसे-ही वैसे वे छिपकर उसके पीछे-पीछे चलते रहे और अन्त में उचित समय पर उनका हाथ उसकी कलाई पर जा पड़ा। शीशी मन्दा के हाथ से गिरकर फर्श पर चूर-चूर हो गयी। उसका द्रव पदार्थ भूमि पर बहने लगा। यद्यपि रायसाहब ने झट से उसके ऊपर अपना ऊनी शाल डालकर उसे ढक दिया, तथापि उस विष की मीठी-मीठी सुवास कमरे भर में फैल गयी। मन्दा ने यद्यपि उस पदार्थ को ज़रा भी ग्रहण नहीं कर पाया था, तथापि इस आकस्मिक घटना के कारण उसकी चेतना अस्थायी रूप से जाती रही। उसका सिर आराम-कुर्सी के पृष्ठ-भाग पर शिथिल होकर गिर पड़ा।

अब वहीं से चिल्लाकर रायसाहब ने पुकारा—ज्ञानू,—ए ज्ञानू।

ज्ञानप्रकाश ने दूसरी पुकार के साथ ही उत्तर दिया—आया बाबू।

ज्ञानप्रकाश ने धीरे-से सिर उठाकर उसे वह आधा गिलास दवा पिला दी। एक मिनट भी न व्यतीत हुआ होगा कि मन्दा ने आँखें खोल दीं। उसके शरीर भर में पसीना दौड़ गया था। मस्तक पर भी उसकी बूँदें झलक रही थीं। ज्ञानप्रकाश ने रूमाल से उसे पोंछ दिया। मन्दा कुछ बोली नहीं, केवल भाई तथा पिता को अपलक देखती भर रही। रायसाहब कुर्सी पर बैठे थे। बोले— अब बैठो, तो तुमको बतलायें हुआ क्या? और उन्होंने आदि से अन्त तक सारा विवरण कह सुनाया। फिर थोड़ा रुककर अन्त में उन्होंने ज्ञानप्रकाश से पूछा—तुम बतला सकते हो ज्ञानू, इसने ऐसी चेष्टा क्यों की? इसको ऐसा घोर असन्तोष अपने जीवन से क्यों हुआ?

ज्ञानप्रकाश ने अपनी ओर से कभी इस बात की चेष्टा नहीं की कि नयीअम्मा के सम्बन्ध में उसके द्वारा कोई ऐसी बात प्रकट हो, जिसको सुनकर इन्हें आन्तरिक क्षोभ पहुँचे। आज भी वह इस विषय में मौन ही रहना चाहता था।

पर ज्ञानप्रकाश को मौन देखकर रायसाहब को कुछ सन्देह होने लगा। वे बोले—तुमसे मैं इसका यथार्थ कारण जानना चाहता हूँ। फिर वह चाहे जैसा क्यों न हो। मुझे विश्वास है कि तुम इस सम्बन्ध में मुझसे अधिक जानते हो।

ज्ञानप्रकाश ने तब उस दिन की घटना का सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया, जिस दिन नयीअम्मा ने उसे पीटा

डाक्टर गंगोली ने उस दिन उसकी परीक्षा करके साफ तौर से यह कह दिया था कि वह क्षयरोग का शिकार हो रही है ?

अब ज्ञानप्रकाश मौन न रह सका। उसने कह दिया—आपका अनुमान ठीक है। उसका यह उत्तर सुनकर रायसाहब फिर बड़ी देर तक कुछ नहीं बोले। उस समय ज्ञानप्रकाश अस्त-व्यस्त होकर जब उठने लगा, तो उन्होंने कह दिया—बैठो, अभी मेरी बात पूरी नहीं हुई।

उस समय ज्ञानप्रकाश पिता की मुद्रा देखकर कुछ चिन्तित हो उठा था। इसीलिए उसका एक-एक क्षण मुश्किल से कट रहा था। उठकर जब वह फिर बैठ गया, तो रायसाहब ने कहा—आज रघुनाथ बाबू तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में पूछ रहे थे। पूछ क्या रहे थे, बल्कि वास्तव में एक लड़की के सम्बन्ध में अपना अभिमत प्रकट करते हुए बहुत उत्साह प्रकट कर रहे थे। उनका कहना है कि मैं यदि यह सम्बन्ध स्वीकार कर लूं, तो बड़ा अच्छा हो। लड़की मैट्रिक पास है, इस वर्ष वह काशी विद्यापीठ की शास्त्री-परीक्षा में बैठेगी। फोटोग्राफ चाहो तो देख सकते हो।

ज्ञानप्रकाश ने सिर ऊपर उठाकर इस बार साहस के साथ पूछ दिया—आपने उनको क्या उत्तर दिया?

रायसाहब बोले—मैं अभी निश्चित रूप से [illegible]

" बिल्कुल अच्छी ?"

" हाँ, कोई खास शिकायत तो नहीं है ।"

रायसाहब बोले—अब तुम जाओ, सोओ । मैं बैठा हूँ ।

"नहीं, मै बैठा रहूँगा । आप सो न पाये, तो आपकी तबियत कहीं खराब न हो जाय ।"

"मेरी तबियत खराब होने की अपेक्षा यह अच्छा है कि मै अब सदा के लिए चल बसूं, ज्ञानू" कहते हुए रायसाहब का कण्ठ अवरुद्ध हो उठा । आँखो मे आँसू भर आये !

"मेरे रहते आप ऐसी बाते करेंगे !' मर्माहत ज्ञानप्रकाश बोला—चलिये, उठिये । दो बजनेवाला है ।

रायसाहब उठकर चलने लगे, तो ज्ञानप्रकाश बोला—अब से कभी ऐसी बात मेरे सामने न कहियेगा । आपको मै अपना पिता नहीं, परमात्मा मानता हूँ । मै नहीं जानता, आपसे अधिक पूजनीय मेरे लिए कौन है !

रायसाहब अब चुपचाप अपने कमरे मे आकर लेट रहे । लेट तो रहे वह, पर नींद उनको नही आयी ।

इस समय प्रत्येक आत्मीय को वे अलग-अलग दृष्टिकोण से देख रहे थे । सबसे पहले उनकी दृष्टि ज्ञानप्रकाश पर गयी । वे सोचने लगे—क्या उसको मै वह सब दे सका, जिसका वह अधिकारी है ? और बातें दूर रहीं, मै उसका विवाह तक नहीं कर [illegible] वह यूनिवर्सिटी की डिग्रियो का कितना भक्त है ? [illegible]

प्रबन्ध और रियासत का काम जब उस पर आ पड़ा, तो उसे कालेज छोड़ने पर विवश होना पड़ा। यदि मैं यह सब काम सम्हाल सकता, तो क्या उसकी अभिलाषा पूर्ण न हुई होती? क्या आज दिन वह आई० सी० एस० न होता? मेरे ही कारण तो उसे मिल की नौकरी स्वीकार करनी पड़ी है! मेरे ही कारण तो उसका भविष्य नष्ट हुआ है! आज यदि वह कहीं ज्वाइन्ट-मैजिस्ट्रेट होता, तो मुझे कितना सन्तोष होता!

“रह गयी उसके विवाह की बात। मुझे स्पष्ट ज्ञात पड़ता है, वह मेरे लिए अब कड़वी घूँट है। क्या मैं उसे पी लूँ? आशा के साथ उसका ब्याह कर देना क्या मेरे सामाजिक गौरव के उपयुक्त होगा? किन्तु यदि ऐसा न होने दूँ, अपना ही मन्तव्य स्थिर रक्खूँ, तो क्या भानु का जीवन सुखी होगा? और क्या वह उसका वास्तविक विवाह होगा? विवाह उसका हो और लड़की मैं उसे अपने मन की दूँ क्या यह उस पर अत्याचार नहीं है?

रायसाहब अब लेटे न रह सके। वे उठकर बैठ गये। बैठे रहे देर तक। कमरे के किवाड़ खोलकर बाहर झाँकने लगे। देर तक वे दरवाजे पर खड़े रहे। खुले गगन की ओर उनकी दृष्टि जा पहुँची। उन्होंने देखा, निरभ्र अम्बर में जो तारिकाएँ छिटकी हुई हैं, वे मेरे मानस-पट पर आकर आज मेरी स्थिति पर हँस रही हैं! फिर देखा, यह जो काली-काली अँधेरी रात है, यह भी मेरे

अन्तस्तल के दुर्निवार अन्धकार से आकर मिल जाना चाहती है। और इस अँधेरी रात की जो शून्यता है, वैसी ही शून्यता क्या मेरे जीवन के आगे नहीं है ? इस बँगले मे एक दिन माँ-बेटो में ईर्षा-द्वेष की वह अग्नि धधकेगी कि दारुण पाशविक वृत्तियाँ नाच-नाचकर अट्टहास करेंगी ! माँ बड़े बेटे को नोचकर खा जाना चाहेगी ! छोटा बेटा तब किसका अवलम्ब ग्रहण करेगा ? लक्ष्मण राम को पिता मान सकते है, भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता के वन्य क्लेश की कल्पना मे राज्य-लोभ का उत्सर्ग कर सकते है, कौशल्या और सुमित्रा अपनी आँखो के तारो को कैकेयी जैसी सौत का हठ स्थिर रखने के लिए चौदह वर्ष के लिए वन को भेजना सहन कर सकती है। और आज की हमारी पत्नी इतना भी नही कर सकती कि उसकी संतान सम्मिलित रूप से प्रेम के साथ रह भी सके !

रायसाहब अब अस्थिर हो उठे ! किवाड़ उन्होंने बन्द कर लिये। फिर आकर चुपचाप पलँग पर लेट रहे। अब उन्हे मन्दा का स्मरण हो आया।—"जिस दिन उसने मेरे जीवन मे पदार्पण किया, कितना आनन्द हम लोगो ने मनाया था ! किन्तु आज ? आज मरण के घाटपर जाती हुई वह तपस्विनी अपने कमरे मे चुपचाप शान्त पड़ी रहती है। उसकी माँ को अपने छोटे बच्चे की ही तीमारदारी से अवकाश नहीं मिलता ! शायद वह डरती है कि कहीं मुझे भी उसका रोग न लिपट जाय ! एक और सन्तान

जो उसकी गोद में है। उसकी महत्ता उसकी दृष्टि में अधिक है। वह पुत्र की जाति है। उससे वंश चलता है, मरने पर पिण्ड मिलता है। तो वंश-वृद्धि और पिण्डदान का यह मोह ही वास्तविक नाता है! आत्मिक सम्बन्ध जैसे कोई वस्तु नहीं है! किन्तु वह मन्दाकिनी है कैसी पूतात्मा! अपने द्विमातृ भ्राता के कारण वह बेचारी इतनी शारीरिक यन्त्रणा और ऐसा कठोर मानसिक क्लेश सहती है। वह सत्य और न्याय पर जान देती है। जीवन से अधिक उसे अपने उस पीड़ित—लाञ्छित—भ्राता का अधिकार प्यारा है। और माता की दृष्टि में यही उसका अपराध है!

"—और तुम, तुम वेदान्त का रात-दिन मंथन करनेवाले रायसाहब तुम्हारे राज्य में ऐसी पवित्र आत्मा को इतना उत्पीड़न मिलता है कि वह आत्मघात करने को तैयार हो जाती है! तुम मर क्यों नहीं जाते? क्या जरूरत है तुम्हारी इस संसार को जब कि तुम इतने पंगु हो! क्या मूल्य है तुम्हारे सारे ज्ञान का? तुम हत्यारे हो—हत्यारे! तुम्हारा मुँह दिखलाना भी पाप है!"

सिर दर्द करने लगा है उनका, मस्तक की नसें तनकर रह गयी हैं। शैया पर लेटे नहीं रह सकते। बार-बार मन्दा के आत्मघात का ही दृश्य नेत्रों के सामने नाचने लगता है। सोचते हैं—आत्मघात जिसे करना चाहिये, वह तो जीवन की फिलॉसफी लेकर बैठता है और जिसे हँसना-खेलना चाहिए, उसकी यह दुर्गति है! हाय रे दुर्भाग्य!

इस समय रायसाहब को अपना जीवन भार-स्वरूप जान पड़ता था। बारम्बार उनके मन में आता था: मुझसे तो मेरी संतान कहीं अधिक उज्ज्वल है। ज्ञानू और मन्दाकिनी दोनों-के-दोनों कितने जागरुक और साहसी हैं! और एक मैं हूँ कि अपने घर का प्रबन्ध भी सुचारु रूप से कर सकने में असमर्थ और असहाय हूँ। इससे कहीं अधिक अच्छा होता, यदि अब इस दशा को प्राप्त होकर मैं मृत्यु की गोद में जा पहुँचता! यदि मेरे लिए अब अपना यह दुर्निवार दुःखद अन्त ही देखना निश्चित है, तो इसकी अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि मैं सदा के लिए आज अपने आपको समाप्त कर दूँ!

आज यही सब सोचते हुए रायसाहब ने सारी रात बिता दी। वे उठते और बैठ जाते, कमरे में टहलते और आरामकुर्सी पर जा लगते। सिर उनका अब फटा जा रहा था। पर वे चाहते यह थे कि सिर नहीं, अब तो हृदय फटना चाहिए—हृदय।

— —

चार

ज्ञानप्रकाश को आशा के यहाँ से गये देर हो गयी थी। इसी समय आया दिवाकर। इस समय वह पहले की अपेक्षा कुछ अधिक स्वस्थचित्त था। आते ही लता की माँ से कहने लगा—अम्मा, डाक्टर त्रिवेदी से मैं मिल आया। घाव ऐसा कुछ अधिक गहरा नहीं है। पन्द्रह-बीस दिन में बिल्कुल ठीक हो जायगा।

रात अब अधिक गहरी हो रही थी। लेकिन दिवाकर लता के पास बैठा था। आशा और उसकी माँ भी वहीं बैठी थीं। लता कभी-कभी पीड़ा से कराह उठती, कभी कुछ स्वस्थ जान पड़ती। वह दिवाकर की ओर देख-देखकर प्रायः मुँह फेर लेना चाहती थी। यद्यपि सिर के घाव के कारण ऐसा करने में वह थी सर्वथा असमर्थ। तब एक बार उसने कह भी डाला—आप यहाँ क्यों बैठे हैं मामू साहब ?—जाते क्यों नहीं ?

आशा बोली—ऐसे नहीं बोला जाता, लता। जो आदमी किसी का दुख-दर्द देखकर उसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करे, उसके प्रति इस प्रकार अपना ऐसा कटु भाव रखना हमारा आज का जगत अशिष्टता और असभ्यता मानता है।

लता तब चुप रह गयी। अब दिवाकर की ओर देखकर न उसने करवट बदलने की चेष्टा की, न कोई कटु बात कही।

जानकी बोली—बड़ी देर हो गयी दिवाकर। तुम अब घर जाओ। दिदिया तुम्हारा रास्ता देखती होंगी।

दिवाकर ने कहना चाहा—मेरा रास्ता देखनेवाला अभी संसार में पैदा नहीं हुआ, किन्तु उसने कहा—चला जाऊँगा अम्मा। ऐसी जल्दी क्या है। डॉक्टर ने कहा था—कुनकुना दूध जितना पी सके, पिला देना। मेरा ख़याल है, पिला दिया होगा आपने।

आशा बोली—हाँ, पिला दिया है।

"और भी एक दवा उन्होंने दी होगी। उससे नींद आ

दिवाकर [illegible] रहा। सोचा इसमें [illegible] है। ऐसी सामग्री कभी नहीं है। [illegible] करती थी [illegible] हो गयी थी।

मुसकराती आशा बोली—हमको अगर कोई ऐसी चीज़ देता, तो मैं तो उसका एहसान जीवन-भर न भूलती।

छाया आशा की ओर देखने लगी। और दिवाकर बोला—तुम अपनी बात मत कहो आशा। संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो तुम्हारे लिए दुर्लभ हो। दुर्लभ है तुम्हारा उन [illegible] का स्वीकार करना।

आशा गम्भीर हो गयी। जब से वह दिवाकर के साथ गयी और वापस आयी, तब से वह बराबर सोच रही थी—मैं बवण्डर में जा पड़ी हूँ; मेरी आँखों पर धूल के कण पड़ रहे हैं, उड़ती पत्तियों, तृणों और पवन के झकोरे लग रहे हैं। किन्तु आज दिवाकर को इस रूप में देखकर उसे सन्तोष हुआ। वह सोचने लगी—यह सब कुछ नहीं है। पानी बरस गया है। आँधी शान्त है और पथ प्रशस्त और शीतल हो रहा है।

जानकी बोली—ख़ैर, अब तुम जाओ बेटा। बड़ी देर हुई। देखो तो, हँसी-ख़ुशी के समय कैसा संकट आ पड़ा।

दिवाकर बोला—मेरी इच्छा तो यही थी कि आज मैं यहीं रह जाता। पर यही ज़रा-सा ख़याल हो आता है कि दिदिया को कोई सूचना नहीं है।

आशा ने शीशे की छोटी-सी गिलासिया में दवा डालकर कहा—लो, लो, पी लो।

अम्मा ने दवा पी ली। [illegible] मिनट के बाद ही उनकी आँखें झपने लगीं। जानकी बोलीं—मैं लेटी हूँ, तुम भी जाओ।

आशा ने कहा—नहीं, मैं जागूँगी, तुम्हीं सोओ जाकर। जागने से कहीं तुम्हारी तबियत न खराब हो जाय!

"मुझे आज जल्दी नींद नहीं आयेगी" अम्मा बोलीं—इसी से कहती हूँ।

तब आशा उसी कमरे में चारपाई बिछाकर लेट रही। लेटे-लेटे वह सोचने लगी—आज दिवाकर ने यह जो भूकम्प मेरे भीतर उपस्थित कर दिया, क्या उसका कारण यह नहीं है कि उसकी तृष्णा बहिरभिमुखी है, अन्तर का दान उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता। किसी स्थिति पर टिकना उसे स्वीकार नहीं है। आज को कल पर वह छोड़ना नहीं चाहता। शरीर का दान ही उसके लिए आत्मदान है। जीवन की प्रत्यक्ष प्यास से बढ़कर उसके लिए कुछ नहीं है! तभी वह कभी इधर देखता है, कभी उधर।

"किन्तु आत्मा के पावन राज्य में ऐन्द्रिक भोग की तृष्णा जहाँ लीन हो पड़ी है—अन्तर्हित हो गयी है—माना कि वहाँ जीवन का

आयेगा। उस वक्त लता घबड़ाने न पाये। कम्पाउण्डर से कहना, आसानी से धोने आदि का काम करे। आठ आने उसे दे देना।

इसके बाद वह फिर दरवाजे पर जाकर बोली—बस, मैं आध घण्टे में तैयार हो जाती हूँ। तब तक तुम चाहे ठहरो, चाहे घूम-फिरकर आ जाओ।

दुलारे बोला—मुझे पुराने मकान तक जाना है। उसकी सफाई कराने के लिए मजदूर लगा देना है। दिवाकर बाबू अब उसीमें रहेंगे। बड़े बाबू ने खुद हुक्म दिया है।

पचीस

कई दिन से आशा रात को रायसाहब के यहाँ रहती है। शाम को अपने घर से चली आती है और प्रातःकाल चली जाती है। वह मन्दा के पास ही सोती है। जब तक मन्दा को नींद नहीं आती, तब तक वह बराबर उससे तरह-तरह की रोचक बातें करती रहती है। उसका लक्ष्य है कि वह प्रसन्न रहे और कोई ऐसी बात उसके मन पर प्रभाव न डालने पाये, जिससे उसकी आत्मा को किसी प्रकार का क्लेश पहुँचे। जब से वह आयी है, तब से मन्दा वास्तव में पहले की अपेक्षा स्वस्थ है। नौ बजे रायसाहब उसके पास एक चक्कर लगा जाते हैं। ज्ञानप्रकाश प्रायः उनके साथ ही आता है। आशा बराबर यह अनुभव कर

रही हैं कि वे उनसे असन्तुष्ट हैं। काम की बातों के सिवा कोई भी बात उनसे नहीं करते। बात करते हुए वे प्रायः तटस्थ रहते हैं। उसे स्पष्ट रूप में ऐसा जान पड़ता है, मानो वे उसके लिए अपरिचित हैं।

कार हेड-पोस्टआफिस के पासवाली सड़क से आगे जा रही थी कि दिवाकर ने टहलते हुए देखा, आशा घर जा रही है। तुरन्त उसने शोफर को खड़ा करने का संकेत किया। शोफर ने कार खड़ी कर दी और दिवाकर आशा के बगल में बैठ गया।

उसके बैठ जाने पर जब आशा कुछ बोली नहीं, तो दिवाकर ने लक्ष किया, वह अन्यमनस्क है। तब वह भी कुछ मिनटों तक चुप ही रहा। कार अपनी गति से चली जा रही थी। सिविललाइन्स के दोनों ओर के बँगले, पेड़ और दाहने ओर का फुटपाथ, सब-के-सब, पीछे दौड़ते हुए छूट रहे थे कि दिवाकर ने मौन भंग करते हुए कह दिया—मन्दा की तबियत तो अच्छी है। कल कालेज से लौटते हुए मैं जो वहाँ पहुँचा, तो वह बहुत प्रसन्न देख पड़ी। दिदिया भी कह रही थीं—ऐसा जो मैं जानती, तो मन्दा बीमार न होने पाती। ..आशा, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उसे बचा लेने का सारा श्रेय तुम्हीं को है।

पर आशा भीतर से भरी-भरी-सी बोली—आप कभी मेरे मुँह पर मेरी प्रशंसा न किया करें मिस्टर दिवाकर। मैं इस चीज से नफरत करती हूँ।

कोई बात नहीं है। आप की सहानुभूति की ज़रूरत नहीं है। कष्ट के लिए धन्यवाद।

वे महाशय अलग हट गये। दिवाकर फिर आशा के पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ क्षणों तक दोनों मौन रहे। ह्वाइटअवे लेडलॉ-बिल्डिंग निकट आगयी थी। दिवाकर बोला—आज तुमने मुझे कितना अपमानित किया है, इस बात को मैं कभी भूल न सकूँगा।

आशा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप चली जा रही थी। दिवाकर उसके बराबर से चल रहा था। इसी क्षण उसने एक बार उनकी ओर देखा। देखा, जैसे उसके मुख पर कालिमा पुत गयी हो! देखते-देखते उसकी गति मन्द पड़ गयी। दस क़दम बाद वह खड़ी हो गयी। बोली—नाराज़ हो गये?

इस समय उसके ओठों पर करुणा का विमल हास फूट पड़ा था।

दिवाकर ने दृष्टि नीची कर ली।

आशा बोली—अच्छा चलो, अब चाय पी ही लूँ। रेस्तोराँ का मैनेजर मालूम नहीं क्या सोचेगा।

दिवाकर ने कहा—अब नहीं आशा। चलो, मैं तुम्हें घर भेज आऊँ।

वह आगे चलने लगा। चलते हुए एक शीतल निःश्वास उससे फूट पड़ा।

नि श्वास लक्ष करती आशा बोली—मै माफी चाहती हूँ।

"एक जगह थी" दिवाकर बोला—जहाँ बैठकर थोड़ी देर कुछ मनोरंजन कर लेता था। चाय पीना तो एक बहाना था। आज से वह जगह भी छूट गयी!

आशा कुछ कह न सकी।

दोनो सड़क से मुड़कर गली की ओर चुपचाप चले जा रहे थे।

छब्बीस

कई दिन से ज्ञानप्रकाश आशा के यहाँ नहीं आ रहा है। लता के सिर मे जिस दिन चोट आ गयी थी, उसदिन से कई दिनो तक वह बराबर आ रहा था। उसके सिर का घाव भी अब भर आया है। वह सोच रही है कि अगले सोमवार से वह स्कूल जाने लगेगी। दोपहर का समय था और जाड़े की सुहावनी धूप खिलखिलाकर हँस रही थी। लता छत की मुँडेर पर नीचे की ओर पैर लटकाये बैठी हुई कुछ गुनगुना रही थी। रात पड़ोस के रेडियो से उसने एक संगीत सुना था। गीत यद्यपि ग्रामीण था, तो भी न-जाने क्यो, वह उसे एक तो भूल नही सकी थी, दूसरे उसके गायन की शैली उसके अन्तर में बस गयी थी, घर बना लिया था उसने।—गलबहियाँ न डालो, मोरा जिया घबराय।

जानकी खाना खाकर ज़रा लेट रही थी। आशा कालेज आज नहीं गयी थी। अपने पढ़ने के कमरे मे चुपचाप कुर्सी पर बैठी हुई वह कुछ सोच रही थी। कई दिन से वह अत्यधिक उद्विग्न थी। प्रारम्भ मे जब वह रायसाहब के यहाँ, मन्दा के पास सोने के लिए, जाने लगी थी, उसके मन में बड़ा उत्साह था। नये वातावरण के प्रति वह बहुत उल्लसित हो उठी थी, किन्तु ज्ञानप्रकाश की मूकता ने जब उसके स्वप्न को छिन्न-भिन्न कर डाला, तो उसके भीतर नाद करनेवाला कल्पनाओ का वह झरना जैसे मन्द हो रहा था।

जानकी की आँखे ज़रा झपक गयी थी। बाहर का दरवाज़ा बन्द था, केवल भीतरी साँकल नही लगी थी। ज्ञानप्रकाश ने पहले बाहरी सिकड़ी खटखटायी, फिर किवाड़ो पर धक्का जो दिया, तो दरवाजा खुल गया। तब धड़धड़ाता हुआ वह भीतर चला गया।

आशा सोच रही थी, मन्दा की तबियत तो एक सप्ताह में बिल्कुल ठीक हो जायगी—उसके बाद ?

—हाँ, उसके बाद वह चुपचाप अपना-सा मुँह लिये चली आयेगी। विवश पशु है वह, जहाँ जिस किसी खूँटे में बाँध दिया जाय, उसे बँधा रहना है। खूटा छोड़कर उसे चाहे पेड़ की जड़ मे बाँध दो, चाहे हरवाहे के डंडे खाने के लिए घास चरने को छोड़ दो। पर शाम को उसे बँधना अपने थान पर ही है।

लता गुनगुना रही थी—

एक तो मोरी बारी उमिरिया, जग से निपट अजान,
दूजे गैल यह साँकरी बहुत है, धरत पग न ठहराय।
मोरा जिया घबराय।

जानकी स्वप्न देख रही थी।—अँधेरी रात है। सब लोग सो रहे हैं। घर में चोर घुस आये हैं। वह उठती है कि आशा को जगा दे; किन्तु उसके पैर थर-थर काँप रहे हैं। वह कोठरी से हटकर, दीवाल का सहारा लेती हुई, दरवाजे तक पहुँचने को हुई कि चोर बाहर से सिकड़ी चढ़ा देते हैं। वह चिल्ला उठती है—हाय आशा, आशा, आ-आ ऽ!

आशा आहट पाकर दालान में चली आयी। आँखें ज्ञान-प्रकाश के सामने होते ही उसका हृदय धक्-धक् करने लगा।—क्या आज भी ये आफिस नहीं गये? यह लाल हो रहा मुख और ये चढ़ी आँखें! वह पूछने ही जा रही थी कि इस समय आ कैसे गये?—बिलकुल साधारण गति से, बिना इस भाव के, कि उसके भीतर, मर्म में, कहीं कोई चोट भी है, शिकायत भी उसे उसके प्रति कुछ हो सकती है—कि ज्ञानप्रकाश आप ही बोला—अम्मा कहाँ है?

"उधर कोठरी में," इशारे से बताकर उसने कह दिया—लेटी हुई हैं। शायद सो रही हैं।

"और लता?"

"वह ऊपर छत पर धूप खा रही है।"

"अच्छी बात है, तब तुम्हारे पास ही बैठता हूँ।" कहता हुआ आशा के पीछे-पीछे ज्ञानप्रकाश उसके कमरे में चला गया।

कमरे में दरवाजे पर चिक पड़ी हुई थी। ज्ञानप्रकाश ने कुर्सी पर बैठने से पहले उसी चिक से बाहर की ओर झाँक कर देखा। कहीं कोई नहीं देख पड़ा। केवल इतना आभास उसे मिला कि कोई ऊपर से उतर रहा है। उसने सोचा, लता होगी। तब उसने एक क्षण भी सोचे बिना, ठहरे बिना, किवाड़ लगा दिये। साँकल लगा देना उसने उचित नहीं समझा।

उस समय आशा उसकी भाव-भंगी देखकर सहम गयी। उसके मन में आया, स्पष्ट कह दे वह—किवाड़ मत लगाओ, किन्तु वह कुछ कह न सकी। उसने अनुभव किया कि वह बोल नहीं सकती, रोक नहीं सकती, मूक जो हो गयी है।

किवाड़ लगाकर निकट आता हुआ ज्ञानप्रकाश बोला—आज तुमको जहर पिलाने आया हूँ। पिओगी?

आशा डरी नहीं, मौन भी वह नहीं रह सकी। मर्माहत होकर बोली—पिला दो। जितनी जल्दी हो सके, पिला दो। मेरे इस प्राण को अपनी कामना के कम्पन पर उतार लो—खींच लो।

ज्ञानप्रकाश बोला—मैं बहुत गम्भीरता-पूर्वक कह रहा हूँ।

"पर मैं तो तुमसे इसकी प्रार्थना कर रही हूँ।"

"तो, लो" कहते हुए उठकर उसने जेब से एक शीशी निकाली

और कार्क खोलकर उसे आशा के होठों से लगा दिया। फिर बोला—चुपचाप पी लो, एक घूँट भी व्यर्थ न जाने पाये।

आशा कुर्सी पर बैठी थी। सिर उसका उसकी पटिया से टिक गया। ज्ञानप्रकाश ने शीशी उसके मुँह से लगाते हुए अपना बायाँ हाथ उसके उसी सिर पर रख दिया। जब आशा सब-की-सब पी चुकी, तो वह शीशी ज्ञानप्रकाश ने लेकर अपने जेब में रख ली और कहा—अब बतलाओ।

मुसकराती हुई आशा बोली—बतलाऊँ क्या ?

ज्ञानप्रकाश ने कहा—यहाँ मेरे पास आओ। एक बात सुन जाओ।

"कहो न" ? मदिर उल्लास के झकोर में आशा बोली।

"इस तरह कहने की नहीं है।" ज्ञानू ने कहा।

आशा मन्त्र-मुग्ध-सी उठकर जो उसके सामने की ओर बढ़ी, तो उसके पैर लड़खड़ाने लगे। सम्भव था कि वह गिर पड़ती, किन्तु उसी क्षण ज्ञानप्रकाश ने लपककर उसे अपनी भुजाओं में भर लिया। दोनों ओर, क्रम क्रम से, उसका चुम्बन लेकर उसने उसे पलँग पर लिटा दिया। आशा ने कुछ भी आपत्ति नहीं की। यह भी नहीं कहा कि यह क्या करते हो! कुर्सी खींचकर पास बैठते हुए ज्ञानप्रकाश बोला—जानती हो, मैंने ऐसा क्यों किया ?

आशा चुप रही। उसकी आँखें इस समय उसी के मुख पर टिकी हुई थीं। हृदय उसका धक्-धक् अब भी कर रहा

था। यद्यपि शरीर में वह एक नवल स्फूर्ति का अनुभव कर रही थी। ज्ञानप्रकाश के प्रश्न पर वह उठकर बैठ गयी। दो तकिये उसने अपनी पीठ और सिर से लगा लिये। फिर भावातुर होकर वह बोली—नहीं जानती। जानना भी नहीं चाहती। कई दिन से मैं बराबर यही सोच रही थी कि मैं मर जाऊँगी। लेकिन बड़ी कठिनाई तो यह है कि मुझे मरना भी नहीं आता।

इसी समय किवाड़ों पर जरा-सी आहट हुई। ज्ञानप्रकाश ने सतर्क होकर पूछा—कौन ?

किवाड़ खोलकर अन्दर आती हुई लता बोली—मैं हूँ। मुझे हालाँकि ऐसे समय यहाँ आना नहीं चाहिए था; किन्तु करती क्या, अम्मा ने तुमको बुलाया है। इसीलिए

आशा पलँग से उतरकर खड़ी हो गयी। उसने चाहा कि वह ज्ञानप्रकाश को न भेजकर खुद माँ के पास चली जाय। किन्तु फिर कुर्सी पर बैठती हुई वह बोली—जाओ, उनसे कह दो, वे खुद चली आवें। उन्हें फ़ुरसत नहीं है।

लता लौट गयी।

धीरे से ज्ञानप्रकाश बोला—जान पड़ता है, खड़ी रही है दरवाज़े पर। सब देखा और सुना है, किवाड़ों की ओट से !

"ऊँह! मैं परवा नहीं करती।" आशा बोली।

पर ज्ञानप्रकाश उठकर खड़ा हो गया। बोला—मैं खुद जाता

बातें उससे मालूम हुईं। तुम्हारी बहुत प्रशंसा कर रहा था। तभी मैंने सोचा तुम कहीं कुछ और न सोच बैठो। मेरा भी कुछ ठीक नहीं रहता। यों मैं किसी पर सहसा अविश्वास नहीं करता। किन्तु एक बार जिसको अपना बना लेता हूँ, उसे किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता। मैंने देखा कि इधर तुम मुझसे नाराज हो, तुम्हारे भीतर का सर्प दूध पी-पीकर मोटा पड़ रहा है, तभी मैंने 'विषस्य विषमौषधम्' का प्रयोग किया।

आशा को यकायक खिड़की से एक पतंग उड़ती हुई आकर एक पेड़ की टहनी से उलझती और फिर साफ बचकर निकलती हुई देख पड़ी। वह उसे देखती रह गयी।

ज्ञानप्रकाश ने पूछा—क्या देख रही हो ?

आशा बोली—एक पतंग आकर उलझ गयी थी। किन्तु फिर संयोग से साफ बचकर निकल गयी और उड़ने लगी।

ज्ञानप्रकाश ने कहा—तो यह कहो कि तुम दर्पण देख रही हो !

इसी समय लता आ खड़ी हुई। बोली—जाने से पहले मुझे एक पद्य का अर्थ समझाते जाइएगा।

ज्ञानप्रकाश समझ गया, लता का उद्देश्य क्या है। किन्तु उसने कुछ कहा नहीं।

आशा बोली—तुम्हारा पिलाया जहर मुझे लगा तो अमृत बनकर; किन्तु अपने इस स्वप्न की रक्षा कैसे करोगे ?

तुमको स्मरण होना चाहिए, एक बार पहले भी मैंने तुमसे यही प्रश्न किया था। पर उस समय भी एक भावुकता-पूर्ण उत्तर देकर तुमने उसे टाल दिया था।

ज्ञानप्रकाश गम्भीर हो गया, कुछ बोला नहीं।

आशा बोली—बोलो, चुप क्यों हो रहे? मैं अन्धकार में नहीं रहना चाहती। मुझे आजकल कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मुझे स्पष्ट देख पड़ता है कि कहीं-न-कहीं कोई दुर्घटना होनेवाली है। जब-जब मुझे अपने सुखद भविष्य पर अत्यधिक हर्ष हुआ, तब-तब प्रायः कोई-न-कोई व्याघात अवश्य उपस्थित हुआ है। आज पहला दिन है, पहला घंटा भी, जब मेरे सुख की सीमा नहीं है। मेरा जी चाहता है, इस क्षण के बाद फिर कभी ऐसा अवसर न आये, जब मैं तुमसे अपने आपको अलग देखने का अवसर पाऊँ। सच कहती हूँ, अगर तुमने वास्तव में मुझे विष ही पिला दिया होता, तो मैं बड़ी सुखी होती!

तब झट ज्ञानप्रकाश बोल उठा—चिन्ता मत करो आशा। मनुष्य का जितना वश है, उतना ही वह कर सकता है और तदनुसार ही पा सकता है। तुम जानती हो, मैं न दुखों से डरता हूँ, न मृत्यु से। काल की लपलपाती हुई रक्त-पिपासु जिह्वाओं को मैं आम्रवन की कोपलों के रूप में देखता हूँ। मुझे किसी का भय नहीं है। जीवन के अन्दर असमय फूट पड़नेवाले ज्वालामुखी को चुटकियों में मसल डालने का मैं अभ्यासी रहा हूँ। सुख-दुःख

और संयोग-वियोग तो जीवन की साधारण गतियाँ हैं। मान लो, विवाह न होगा—न हो। किन्तु मुझसे तुमको चील का-सा झपट्टा मारकर जब कोई छीनने की ही चेष्टा करेगा, तब उसका गला तो मैं घोट ही डालूँगा, फिर चाहे वह काल ही क्यों न हो। मैं जानता हूँ, संसार की सत्ता के ऊपर एक शक्ति है। हम उसे स्रष्टा कह सकते हैं। हमारी कल्पनाओं पर वह हँस सकता है। मैं कहता हूँ, वह हँस ले। किन्तु मनुष्य की हड्डियों का यह ढाँचा, यह नर-कंकाल, जब गंगा की उजली, चमकीली, शान्त और शीतल रेणुका पर चिरमूक किन्तु चिरमुक्त अट्टहास करता है, तब क्या वह उस निर्मम अदृष्ट पर भी हँस सकने में समर्थ नहीं होता!—जब जीवनहीन होकर भी रहता है वह मानवात्मा का ही प्रतीक!

आशा ज्ञानप्रकाश को देखती रह गयी; कुछ बोल न सकी।

ज्ञानप्रकाश बराबर कहता गया—अदृष्ट का हास तो जीवन पर ही फटता, लगता और विलम्बित होता है। किन्तु मृत्यु से परे जीवन की जो अमर स्थिति है, अदृष्ट का वह निरंकुश जनक भी उस पर हँसने में क्या कभी समर्थ हो सका है? मेरी समझ में नहीं आता कि तुम आशा होकर अदृष्ट से इतनी आतंकित क्यों होती हो! मृत्यु से बढ़कर जीवन की चरम शान्ति, चरम पवित्रता, मैं नहीं मानता। प्रत्येक क्षण मैं उसका स्वागत करने को तैयार हूँ। इसीलिए घोर-तन्मय मानसिक अवस्था के अनन्तर पर मैं गंगा-तट पर जाकर उसकी प्रशान्त लहरों के साथ खेलने

देकर। चाय का रंग इतना गहरा नारंगी वर्ण का रक्खा कि ज्ञानप्रकाश प्याला सामने आते ही प्रसन्न होकर बोला— वाह ! कितना सुन्दर कलर दिया है तुमने इस चाय पर, कि ।

मुसकराती हुई लता बोली—हाँ, फिर बाद का भाग भी पूरा कर दो न ?

" वह अपने आप ही पूरा है।" कुछ गम्भीर होकर ज्ञानप्रकाश ने कहा—बहुत-सी बातें और घटनाएँ जीवन में ऐसी भी आया करती हैं, जो ऊपर से प्रायः अधूरी देख पड़ती हैं किन्तु वास्तव में वे होती अपने आपमें पूर्ण हैं। अपूर्णता में ही उनका सौन्दर्य यथेष्ट स्पष्ट रूप से झलक जाता है। आगे उनको पूर्ण करने की आवश्यकता नहीं रहती। अपूर्णता का भी अपना एक महत्त्व है, पूर्णता उसे खो डालती है। जैसे अपूर्णता एक पृथक् वस्तु-स्थिति है, वैसे ही पूर्णता भी। पूर्णता कभी अपूर्णता को पा नहीं सकती। पाने की चेष्टा भी जो कभी करती है तो उसे अपने आप को समाप्त कर देना पड़ता है। नवीनता की प्राप्ति वहाँ नहीं होती। वह तो पतन का मार्ग होता है। परन्तु अपूर्णता पूर्णता को पा लेती है। कली पुष्प बन जाती है, किन्तु पुष्प कली नहीं बन सकता। सरिता सागर के पास दौड़के चली जाती है। सागर कह सकता है—'तू तो अपूर्ण है री ठगिनी, पूर्ण तुझे आज मैंने किया है।' किन्तु सरिता यदि कह [illegible] 'तू [illegible] है रे शैतान। मैं अन्यत्र चली जाऊँ तो तुझे [illegible]

भी पाये।' तब सागर निरुत्तर हो जायगा। और इस प्रकार सागर और पुष्प पूर्ण होकर भी अपूर्ण ठहरेंगे।

मन्त्र-मुग्ध लता बोली—एक दिन मैंने सोचा था; सोचा क्या, बल्कि मन्दाकिनी से कह भी डाला था कि दद्दा कवि हैं। उस समय मैं यह न जानती थी कि तुम केवल कवि ही नहीं हो, फिलॉसफर भी हो। चलो, आज यह बात भी मेरे आगे स्पष्ट हो गयी।

कुछ सोचता हुआ गम्भीर ज्ञानप्रकाश बोला—मेरे सामने कभी मेरी प्रशसा मत किया करो लता। मुझे यह बात पसन्द नहीं है।

बस, इतना कहकर वह चलने लगा। किन्तु लता ने आग्रह करके उसे थोडी देर और बैठने को विवश कर दिया। अन्त मे इधर-उधर की बातचीत के बाद जब ज्ञानप्रकाश चलने लगा, तो लता ने पूछा—अब कब दर्शन होंगे ?

ज्ञानप्रकाश पैंट के जेबो मे दोनो हाथ डालकर, मुँह में पान भरे रहने के कारण सिर को जरा ऊँचा करके, कहने लगा—ठीक नहीं कह सकता। आजकल अवकाश बहुत कम मिलता है।

लता ने कहा—कल तो रविवार है, छुट्टी रहेगी।

"हॉ, छुट्टी तो जरूर है," ज्ञानप्रकाश ने कहा—किन्तु मेरे ऊपर कामो का बोझ भी कम नहीं है। अवकाश निकाल सका, तो आऊँगा। लेकिन वादा नही करता।

डोलती-हॅसती लता बोली—आप तो इस तरह बोलते हैं,

जैसे अपने वचन के बिल्कुल ही पक्के हो। उस दिन मैंने कितना कहा था कि चलते समय मुझसे मिलकर जाइयेगा, एक पद्य का अर्थ पूछना है, किन्तु आपने मेरे उस अनुरोध की परवा नहीं की।

पान की पीक निगलते हुए ज्ञानप्रकाश ने कहा—मैं ऐसा ही हूँ लता। ऐसी बहुतेरी बातों की याद मुझे प्रायः भूल जाती है, पीछे याद आने पर जिनके तात्कालिक महत्त्व के लिए पछताना पड़ता है। इसके लिए तुमको मुझे माफ कर देना होगा।

बस, इतना कहकर ज्ञानप्रकाश फिर चलने लगा। किन्तु लता ने फिर टोंक दिया। बोली—फिर भी आप यह नहीं बतला रहे कि कल आयेंगे या नहीं।

तब विवश ज्ञानप्रकाश ने कह दिया—अच्छी बात है। मैं कल अवश्य आऊँगा, दोपहर के बाद।

दूसरे दिन तिखण्डे पर बैठी हुई लता बराबर जीने पर कान लगाये हुए थी। ज्ञानप्रकाश के आने में ज्यों-ज्यों देर लग रही थी, लता त्यों-त्यों अधीर होती जा रही थी।

दोपहर ढल चुकी है। धूप की प्रखरता ने मन्दता धारण कर ली है। नयी उजली साड़ी पहने हुए लता उस मन्द धूप में बैठी बराबर जिस ज्ञानप्रकाश की प्रतीक्षा कर रही है, उसके आने का ज़रा-सा सन्देह भर हो जाने पर वह जीने के द्वार की ओर देखने लगती है। उस दिन उसने दीदी के साथ ज्ञान-प्रकाश को जिस रूप में देखा था, कल्पना की गति पर उससे आगे

बढ़ती हुई मन एक निष्कर्ष पर जा पहुँचती है। बार-बार वह अपने-आपसे पूछती है—दीदी का सौभाग्य क्या सचमुच मुझे चुनौती दे रहा है? क्या यही निश्चित है कि वे मेरे कभी हो नहीं सकते? तो उस दिन जब वे मुझे नन्दा के साथ कार में बैठाकर ले गये थे, मैंने जो वह एक स्वप्न देखा था, क्या आज का दिन उसपर व्यंग्य की हँसी हँसने के लिए आया है?

उसी क्षण लता का ध्यान पीपल की एक डाल पर जा पहुँचा। वह सोचने लगी—यह डाल एक दिन टहनी थी और साधारण बोझ भी इसे सह्य नहीं था। झुक-झुक पड़ती थी, झूलने लगती थी। किन्तु है किसी की शक्ति, जो आज इसे झुका ले?

"हाँ, है क्यों नहीं?" आप-ही-आप उसके भीतर एक उत्तर आ गया—जब आतप का उदय होगा, वसुन्धरा उत्तप्त हो उठेगी, सर-सरिताएँ सूख जायँगी और वायु में अग्नि का-सा बल आ जायगा, तब आँधियाँ आयेंगी। उस समय वायु के पैर अपनी गति की साधारणता त्यागकर सर्वथा उन्मुक्त होकर दौड़ पड़ेंगे। उसका एक-एक झोंका शैतान बन जायगा। मर्यादा उसको सहन न होगी। दया और ममता को वह कुचलता चलेगा। छप्पर और खपरैल, पेड़ और बिजली के खम्भे तक, अपने आधार से चिपके न रह सकेंगे। बड़े-से-बड़े और ऊँचे-से-ऊँचे छायामय वृक्ष अपने अन्तिम स्तर तक से हिल जायँगे! जड़ें भूमि की छाती

फाड़कर बाहर आ जायँगी और मनुष्य की कल्पना पर हँस देंगी। तनों का पेट फट जायगा और वृक्ष की अँगड़ियाँ राजपथ पर बिखर पड़ेंगी। ये डालें अपनी बाँह भी जो कहीं किसी मकान की छत पर फैला देंगी, तो कंकड़-चूने और सीमेंट की ये अभिमानिनी दीवालें भी फटती हुई आह भरकर रह जायँगी!

—अच्छा तो आँधी ही वह चीज है, जो इस सृष्टि पर राज्य करती है। यह बात है। सम्राज्ञी है आँधी। और अगर कोई नारी उस आँधी को भी अपनी मुट्ठी में कर सके, तो?—हाँ, तो??

—पगली लता! नारी आँधी को मुट्ठी में करेगी!—वह नारी, जो स्वत: एक आँधी है! और फिर लता की नारी, जो नित्य झकोरे खा-खाकर झुकती और झूलती है!

—तो लता भी नारी-रूप में आखिर आँधी ही है।

सिहर उठी लता। वह आँधी नहीं है तो ज्ञान और प्रकाश से उलझती क्यों है? क्यों वह आशा के आगे आती है?

—लेकिन उस दिन उन्होंने मुझे अपनी भुजाओं पर उठा लिया था! मेरे लिए वे कितने दुःखी हुए थे! उन्हीं की कृपा से मैं इतनी जल्दी अच्छी हो गयी। मेरे सिर का घाव भी जल्द भर आया!

—हाँ, सिर का घाव तो भर आया। लेकिन!

उठकर खड़ी हो गयी लता। कमरे के बीच आकर वह खुली खिड़की से उस ओर देखने लगी। उस मकान की

दीवाल पर कबूतरों का एक जोड़ा बैठा था। मन उसका उन्हीं पर अटक गया। चोंच में चोंच डालकर वे परस्पर कुछ कह-सुन रहे थे।

खिड़की झट बन्द कर ली लता ने। आगे का दृश्य उससे देखा नहीं गया। चारपाई खड़ी थी वहाँ। उसने झट से उसे बिछा लिया। फिर चुपचाप वह उसी पर लेट रही।

सन्ध्या होने जा रही थी। आशा बोली, चलो अब ज़रा ऊपर बैठा जाय।

ज्ञानप्रकाश बोला—हाँ चलो, आज की संध्या मुझे बड़ी सुहावनी लग रही है।

आशा मुसकराने लगी।

ज्ञानप्रकाश भी ज़रा-सा मुसकरा दिया। फिर बोला—सचमुच आशा, आज मेरे आनन्द की सीमा नहीं है।

दोनों धड़धड़ाते हुए ऊपर जा पहुँचे।

लता लेटी थी। सकपकाकर साड़ी सम्हालती हुई उठकर खड़ी हो गयी।

"अरे, तू यहाँ सो रही थी लता।" ज्ञानप्रकाश ने आश्चर्य्य से कह दिया।

"सोती तो नहीं थी, पर स्वप्न एक जरूर देख रही थी।" अत्यन्त गम्भीर होकर लता ने उत्तर दिया।

आशा बोल उठी इसी समय—"चार बीड़े पान तो लगाकर

ले आना, लता। बड़ी देर से इनके मुखमें . क्यों ?" मुसकराती आशा के इस कथन के उत्तर में ज्ञानप्रकाश इस समय मुसकरा न सका। लता की बात का मर्म वह खोज रहा था और अन्य-मनस्क लता नीचे जा रही थी।

जब लता कई सीढ़ी नीचे उतर गयी, तो ज्ञानप्रकाश चारपाई को बाहर खिसकाकर, उस पर बैठता हुआ बोला—बड़ी भावुक हो रही है आजकल। तसवीर के इस पहलू पर मेरी दृष्टि पहले कभी नहीं गयी थी।

वहीं कुरसी खिसकाकर आशा भी बैठ गयी और बोली—लाचारी है। तुम, हम या और भी कोई इसके लिए कर ही क्या सकता है!

"ऐसी बात नहीं है आशा" ज्ञानप्रकाश और भी गम्भीर होकर कहने लगा—उस दिन इसने अम्मा से जो चुगली की, वह अपना एक दृष्टिकोण रखती है। सच्ची बात तो यह है कि लता में तुम्हारे प्रति मैं एक विद्रोह देख रहा हूँ। यह स्थिति कम भयावह नहीं है। अब हमें कुछ अधिक सतर्क रहना पड़ेगा।

"मैं यह सब कुछ सोचना नहीं चाहती। निरपेक्ष होकर आशा ने कह दिया।

ज्ञानप्रकाश चुप रह गया।

लता ने नीचे बैठकर पान नहीं लगाये वरन् वह पनडब्बा ही लेकर ऊपर आ पहुँची।

लता के हाथ में पनडब्बा देखकर ज्ञानप्रकाश ने आशा की ओर देखते हुए आँख का संकेत कर दिया। कई मिनट तक फिर किसी ने कोई बात नहीं की।

अन्त में ज्ञानप्रकाश ने ही निस्तब्धता भंग करते हुए कहा—आज कितने दिनों बाद इतनी देर तक यहाँ एक साथ बैठने का अवसर मिला! नित्य दौड़ते-दौड़ते मैं तो प्रायः इतना थक जाता था कि फिर कहीं जाने-आने की इच्छा ही न होती थी। पढ़ना कितने दिनों से छूटा हुआ है! साल बीत रहा है और तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने एक भी उपन्यास नहीं पढ़ा।

मुँडेर पर पनडब्बा रखकर लता पान लगाती हुई बोली—लेकिन सिनेमा तो प्रायः देखते ही हैं।

"नहीं लता" ज्ञानप्रकाश बोला—इधर छै महीने में सिनेमा भी मैं सिर्फ एक बार देखने गया हूँ।

पान देती हुई लता ज्ञानप्रकाश की ओर एकटक देखने लगी। यहाँ तक कि एक बार तो ज्ञानप्रकाश भी सोचने लगा कि इस निःशंक दृष्टि से उसने उसे इसके पहले कभी नहीं देखा। जैसे वह उसकी आँखों में समा जाना चाहती है, ऐसी अपलक दृष्टि है वह।

साथ ही उसने कह दिया—मुझे विश्वास नहीं होता!

फिर वह आशा को भी पान देने लगी। पर उसने कहा—इस समय मैं न खाऊँगी। इच्छा नहीं है।

सोचने लगी—पंखों के लिए यह विराम है, किन्तु उड़ने के प्रवाह के लिए गति।

—लेकिन पख अगर ऊपर-नीचे हो-होकर उड़ते न चलें, तो वह गति भी आगे चलकर विराम बन जाय।

ज्ञानप्रकाश नीचे आकर वोला—अम्मा, अम्मा। मैं अब जाऊँगा।

रसोईघर से वोलते हुए जानकी ने पूछा—जाओगे? अच्छा बेटा, जाओ। लेकिन रोज न सही, दूसरे-तीसरे दिन तो हो जाया करो।

चार दिन के बाद आशा से मिलकर जब ज्ञानप्रकाश जाने लगा, तो अपने कमरे से बाहर निकलती हुई लता बोली—कहाँ जाइयेगा अब?

"कहाँ बताऊँ?" कहकर पहले ज्ञानप्रकाश चुप हो रहा। फिर पैंट के जेबों मे हाथ डालते हुए बोला—आज सिनेमा देखने जाना चाहता हूँ।

लता बोली—मै भी चलूँ?

"तुम!" विस्मय के साथ ज्ञानप्रकाश ने कहा।

"क्यों?" के साथ भृकुटियो के चाप चढ़ाती हुई लता ने तपाक से कह दिया—आपको आज इसमें सोच-विचार की बात जान पड़ती है!

विस्मित और विवश ज्ञानप्रकाश धीरे-से बोला—अच्छी बात है, अम्मा से पूछ लो।

लता चट से जानकी के पास चली गयी। बोली—अम्मा, अगर आज तुम खाना बना लो, तो मैं ज्ञानू दद्दा के साथ सिनेमा देख आऊँ। कितने दिन से नहीं गयी हूँ!

"आशा भी जा रही है?"

"दीदी? दीदी से मैंने पूछा नहीं। लेकिन वे कैसे जायँगी? उन्हें मन्दा के यहाँ न जाना पड़ेगा?"

"अरे हाँ, मैं यह भूल ही गयी थी।" जानकी बोली—अच्छा तो खाना तो खाती जा।

आतुर लता बोली— नहीं अम्मा। अब मैं खाना इस समय न खाऊँगी। मुझे भूख नहीं है।

और तब वह आँगन में आकर ज्ञानप्रकाश से कहने लगी—आप जरा-सा वहाँ बैठ जाइये, अन्दर। मैं जल्दी से कपड़े बदल लूँ।

चुपचाप ज्ञानप्रकाश लता के कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ गया। बिजली का लैंप जल रहा था। ज्ञानप्रकाश उस कमरे के इधर-उधर देखने लगा। उसे स्मरण आ गया कि उस दिन जब वह इस कमरे में आया था, तो इसी लता से जान छुड़ाकर उसे भागना पड़ा था। तब उसके भीतर एक प्रश्न बोल उठा—और आज?

वह सोचने लगा :

आज इसकी उसे आवश्यकता है। लता भूल गयी है। उसने गलत रास्ता पकड़ लिया है। उसे यह सुझाने की जरूरत है कि धारा को छोड़कर रहने में ही उसकी शोभा है। मनुष्य यदि पशु-पक्षियों का अनुकरण करने लगे, तो वह मनुष्य नहीं रह जायगा। माना कि तृष्णा जीवन का अंग है, किन्तु दूसरे के सामने का गिलास उठाकर पी जाने में बल-प्रयोग की जो निर्ममता और कुटिलता है, मनुष्य की शोभा वह कभी बन नहीं सकती। उस दुष्टता का आधार मानवता कभी नहीं हो सकती। इससे तो मनुष्य पशु बन जायगा और एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब वह कीड़े की भाँति मसल दिया जायगा।

उग्र हो उठा ज्ञानप्रकाश। यकायक उसकी दृष्टि लता की टेबिल पर उल्टे रक्खे एक फोटो-स्टैण्ड पर जा पड़ी। लपक कर जो उसने देखा, तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसी का फोटोग्राफ उसमें लग रहा था।—"कहाँ से पा गयी यह इसे ?" एक प्रश्न उठा। तब उसे स्मरण हो आया, आशा ने जिद करके एक दिन अपने सामने इसे ईस्टर्न-फोटो-स्टूडियो में उतराया था।

इसी क्षण लता आ पहुँची। आसमानी जारजेट की साड़ी उसने पहन ली थी। नीले रंग के चमकीले साटन की कंचुकी पर स्लेट कलर का मुलायम ऊनी कोट, साड़ी के ऊपर,

उसने ऐसे ढंग से धारण कर रक्खा था कि उसके खुले हुए कालर से साड़ी की बेलदार कोर और कंचुकी का ऊर्ध्वभाग. छिपे तौर से झांक रहा था। पैरों में ऊँची एड़ी के चप्पल थे। मुख पर उसने आज हलका सुवासित पाउडर भी लगाया था। अधर पर लिप-स्टिक की लालिमा अलग लहक रही थी।

आते ही उसने कहा—चलिये।

ज्ञानप्रकाश ने एक बार नख से शिख तक उस पर दृष्टि डाली, किन्तु कुछ कहा नहीं। अत्यन्त गम्भीर होकर वह उसके साथ चल दिया।

अट्ठाइस

कार बाहर खड़ी थी। ज्ञानप्रकाश बोला—बैठो।

लता पीछे बैठने लगी, तो ज्ञानप्रकाश ने कहा—पीछे नहीं, यहीं बैठो, बात करता चलूँगा।

लता एंजिन के बगलवाली सीट में बैठ गयी और बैठते ही गुलगुली सीट पर धँसकर उछल पड़ी। एक दिन था, जब वह इसी गाड़ी पर नन्दा के साथ बैठी थी। उस समय वह पिछली सीट पर इस ओर थी, बीच में मन्दा थी और उसके बाद यही ज्ञानप्रकाश। किन्तु आज तो वह ज्ञानप्रकाश के दाएँ ओर बैठी है और दायीं बाह का यह कंधा उससे छू-छू जाता है।

बात-की-बात में वह पुल पर आ गया। अब लता कुछ सशंकित हुई। आतुरता के साथ वह बोली—लेकिन तुम जा कहाँ रहे हो ?

ज्ञानप्रकाश ने कहा—घबराओ मत। डरने की कोई बात नहीं है। सिनेमा ही न देखोगी, या और कुछ ?

गाड़ी तेज़ी के साथ दौड़ रही थी।

लता अबकी बार चुप हो रही।

ज्ञानप्रकाश बोला—कल्पित सिनेमा से तुम्हे भला क्या संतोष होता। इसीलिए मैंने देखा, तुमको आज सजीव सिनेमा दिखलाऊँगा। बस, अब आ गये।

लता बोली—मै नहीं जानती, आप कहना क्या चाहते है !

"ज़रा और ठहर जाओ।" ज्ञानप्रकाश बोला—लो, यहीं, बस यहीं ठहरना है। और इतना कहकर गंगा के उस पार, अँधेरी रात के उस पहले चरण मे, वह उस सुनसान सड़क पर गाड़ी खड़ी करके उतरने लगा। बोला—अब उतर पडो। ज़रा देर यहाँ टहलेगे और बाते करेगे।

सशंकित और विस्मय-विदग्ध लता कार से उतर पड़ी। सडक पर एक छोटा-सा पुल था। उसी पर एक ओर दोनों बैठ गये।

अँधेरा काफी घना हो चला था। सड़क पर, दोनो ओर, कहीं कोई देख नहीं पड़ता था। पवन मन्द-मन्द झकोरे ले रहा था। लता का हृदय भीतर धक्-धक् बोल रहा था। उसके मानस

में लहरें उठ रही थीं, नयनों मे मादकता आ रही थी। कुछ कहने को जी चाहता था, कुछ गा उठने की तबियत होती थी। भावनाएँ उभर-उभरकर भाषा पर आ रही थीं। केवल शब्द फूटने भर की देर थी।

ज्ञानप्रकाश बोला—आज तुम मुझे बड़ी सुन्दर लग रही हो। शायद यह पहला दिन है, जब अपनी लालसा के बन्धन खोलकर तुमने अपने रूप की ऐसी मनोहर झाँकी देखने का मुझे अवसर दिया है।

तुरन्त कुछ न कहकर लता क्षण-भर ज्ञानप्रकाश की ओर देखती रही।—'यह कैसी दृष्टि है' वह सोचने लगी। किन्तु जब कुछ तै न करसकी, तो एक बार साहसकर मतवाली-सी होकर बोली—मैं जानती थी, एक दिन तुम मुझे जरूर प्यार करोगे।

"वही तो मैं देख ही रहा हूँ।" उत्तेजित होकर ज्ञानप्रकाश बोला—नागिन को चाहे जितना दूध पिला दिया जाय, किन्तु समय पर डस लेने का अपना स्वाभाविक गुण वह कभी भूल नही सकती। तुमने सोचा होगा—'ज्ञानप्रकाश भी आखिर मनुष्य ही ठहरा, छूटकर जायगा कहाँ? सीधी तरह से न सही, जबरदस्ती तो मैं उसे अपना बना ही लूँगी।' अच्छा तो है। अब आज अच्छी तरह से मुझे समेटकर, बाँधकर, समाप्त करके, जरा देखो। मैं भी तो देखूँ, तुम मुझे कितना प्राप्त कर लेती हो! किसी की सुख-

सम्पदा, किसी का उन्नत सुख और विलसित भविष्य देखकर अगर तुम्हारे भीतर द्वेष की ऐसी आँधियाँ आती हैं कि तुम अपने को सम्हाल नहीं सकतीं, संयत नहीं कर सकतीं, रोक नहीं सकतीं ; अगर तुम में भक्ष्याभक्ष्य और ग्राह्याग्राह्य का भेद मिट जाना चाहता है, पलकों से आँखों को मूँदकर, अँगुलियों और हथेलियों की आड़ लगाकर, अगर तुम धूल के कणों से अपनी आँखें बचा नहीं सकतीं : तो मैं चाहता हूँ, तुम अन्धी हो जाओ।—रास्ते पर खाई-खन्दक जो भी पड़े, उनमें गिर पड़ो। जान तो लो एकबार, कि अपने को सर्वथा असीम छोड़ देने पर जीवन का स्वरूप कैसा बनता है!

पहले लता विस्मित थी, क्षण-क्षण उसका संशय में डूबा हुआ था। फिर वह मोहाच्छन्न हो गयी। जान पड़ा उसे, वह कृतार्थ हो गयी। जिन घड़ियों के मिलन की कल्पना वह आज कई मास से कर रही थी, प्रतीत हुआ उसे, वे मिल गयीं, प्राप्त हो गयीं, आ गयीं उसके जीवन के आँगन में, लिपट गयीं उसके कण्ठ से और वक्ष से—प्राण और उसके कम्पन से। तब वह उन थोड़े से क्षणों में आत्म-विभोर हो गयी। बोध हुआ उसे, यही जीवन है, यही स्वर्ग, इससे परे कहीं कुछ नहीं है। पाप नहीं है, प्रकृति है वह—धर्म। किन्तु फिर दात-कीन्दात ने उसका सजीव स्वप्न भंग हो गया। उसे प्रतीत होने लगा—'यह तो अवहेलना है मेरी, तिरस्कार है यह! मेरे साथ छल किया गया है।' तब उसके मुख

पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। जिन पलकों पर अभी अभिसार का मदिर उल्लास था, अब उनसे चिनगारियाँ फूटने लगीं। तब बोली वह—"तो मेरा ऐसा अपमान करने के लिए ही आप मुझे यहाँ ले आये! एक नारी का प्यार आपके लिए इतना सस्ता हो गया कि आप उसे सर्वथा तुच्छ समझ बैठे! दीदी ही आपके लिए सब कुछ हैं, मैं जैसे कोई चीज ही नहीं हूँ! कौन-सी विशेषता है उनमें, मैं भी तो जरा सुनूँ—समझूँ? क्या वे मुझसे अधिक सुन्दर हैं? फिर आपको चाहे न मालूम हो, लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि दिवाकर के साथ उनका .. !"

"चुप रहो।" एक तीव्र कड़क के साथ ज्ञानप्रकाश बोल उठा—तुम्हारी यह जिह्वा ऐसी बात कहते समय कटकर गिर जानी चाहिए थी। द्वेष की आग तुम्हारे भीतर इस कदर धधक रही है है कि तुम अपना और पराया, सत्य और असत्य, कुछ नहीं देख रही हो। तुम सोचती हो—रूप की प्राप्ति ही सुख की सीमा है। तुमने सीखा है—दैहिक भूख की पूर्ति ही जीवन की चरम सार्थकता है। तुमने पढ़ लिया है कि विकास के मार्ग में कुटिलता भी हितकर है। किन्तु मैं तुम्हें साफ तौर से यह बदला देना चाहता हूँ कि यह तुम्हारी भूल है। तुम्हें पता होना चाहिए कि आशा का हृदय कुसुम-दलों-सा सुकुमार है। तुम्हें आज उससे द्वेष करने का साहस हुआ कैसे! उसे पता चल जाय कि तुम्हारी यह स्थिति है, तो जानती हो, उसका जीवन कितने संकट में पड़ जाय?

ही भीतर-ही-भीतर, वीणा के तारों की भाँति, कभी-कभी झंकृत हो उठता है। जैसे कोई झील है और सदा के लिए भरी है। चाहे जब मार्जन कर लो उसमें। चाहे तट की चट्टान पर बैठकर, पैर नीचे लटकाकर, पानी पर छपछपाओ, चाहे भीतर पैठकर घंटों तैरते रहो। उसकी चिर शान्ति भंग नहीं होने की। किन्तु नारी एक आँधी भी है, एक सरिता भी है। उसमें वेग और प्लावन भी कभी आता है। कभी वह उत्तरंग हो-होकर बजती वीणा के समस्त तारों की भाँति एक साथ झंकृत होकर अपने आपको तोड़ भी डालना चाहती है, मदमाती सरिता की भाँति प्रवाह की गति को बदल भी सकती है और बीच में पुलिन भी बना देना चाहती है। यह सब तो कभी सोचा नहीं था उसने। तभी वह लता के इस कथन को सुनकर एक बार स्तम्भित हो उठा।

ज्ञानप्रकाश को मौन देखकर लता फिर बोली—मुझसे भूलें होती हैं—बराबर होती रहती हैं, यह मैं मानती हूँ। किन्तु तुम यह क्यों नहीं सोचना चाहते कि लक्ष्य के निकट पहुँचने की तीव्रता में, जहाँ मैं अपने को सम्हाल नहीं पाती, वहीं तो मुझसे भूलें होती हैं। उस दिन दीदी दिवाकर बाबू के साथ चली गयी थीं, यद्यपि वे वास्तव में मुझको ही लेने आये थे। किन्तु तुम जानते तो हो, वे कैसे हैं! पहले मैंने जाने का वचन दे दिया था। परन्तु पीछे जब मैंने विचार किया, तो मैं सम्हल गयी। लेकिन मैंने देखा, दीदी को कोई आपत्ति नहीं हुई। मैं अभी यही कहना चाहती थी।

नहीं। मैं पत्थर हूँ, मेरे पास सत्य और न्याय की निर्ममता है, क्षमा और दया के नाम पर पनपनेवाला कलुष नहीं।

आँसू पोंछती हुई लता गाड़ी की ओर चल दी। ज्ञानप्रकाश भी पीछे हो लिया।

दोनों चुपचाप गाड़ी में बैठ गये। दोनों अब भी कन्धे-से-कन्धा लगाये बैठे थे, किन्तु मौन और आत्म-द्वन्द्व। उस समय उनके मन की अवस्था बात करने योग्य न थी।

लता सोच रही थी—क्या मैंने वास्तव में भूल की है?

और ज्ञानप्रकाश सोच रहा था—यदि उस दिन लता, मुझे उस कमरे में, उस रूप में, न देख पाती या यदि मैं आतुरता में आकर आशा के साथ उस तरह पेश न आता, तो ये बातें पैदा ही न होतीं।

थोड़ी देर में जब गाड़ी मालरोड पर आ गयी, तो एक रेस्तोराँ के सामने पहुँचते हुए ज्ञानप्रकाश ने गाड़ी खड़ी कर दी। पहले वह स्वयं उतर पड़ा। फिर गाड़ी के आगे से घूमकर, लता के निकट आकर, उसकी ओर की खिड़की खोलते हुए वह बोला—भूख लगी है। कुछ खा-पीकर चलेंगे।

किन्तु कुनमुनाती हुई-सी लता बोली—तुम्हीं खा-पी लो। मैं यहीं बैठी हूँ। मुझे भूख नहीं है।

"गलत बात है।" कहता हुआ ज्ञानप्रकाश बोला—तुम नाराज हो गयी हो, इसी से ऐसा कहती हो। मैं तुमसे दूर भी

असल में कर नहीं सकता। उत्तेजनावश कह जाना दूसरी बात है। और सच पूछो तो, घृणा मैं किसी से नहीं कर सकता।—दुश्मन से भी नहीं। फिर तुम तो ..।

वह आगे 'अपनी हो' कहने ही जा रहा था; किन्तु फिर कह नहीं सका। उसकी आँखें लता के मुख पर थीं। रेस्तोराँ के सामने बिजली के तीव्र बल्ब का प्रकाश लता के मुख की भाव-भंगिमा को ग्रहण करने में उसका सहायक हुआ। उसने स्पष्ट रूप से देख लिया कि उसकी आँखें सजल हो रही हैं।

गंगा-पार से ही सावधानी के साथ कार ड्राइव करता हुआ ज्ञानप्रकाश बराबर इस घटना के कथोपकथन की मीमांसा करता आया है।—"उसने कहा—तो उस दिन तुमने मुझे मर क्यों नहीं जाने दिया? तुम इतने सुन्दर क्यों बने? जीवन की सारी महानता तुमने अपने ही हिस्से में क्यों रख ली? मनुष्य न रहकर तुम देवता क्यों बन गये? फिर मान लिया कि बन ही गये तो अब पूजा की मेरी इस भेंट को ठुकराते क्यों हो?

' उसने कहा है—मुझसे भूल होती ही रहती है। किन्तु तुम यह क्यों नहीं सोचना चाहते कि लक्ष्य के निकट पहुँचने की तीव्रता में जहाँ मैं अपने को सम्हाल नहीं पाती वहाँ तो मुझसे भूलें होती हैं।

असल में कर नहीं सकता। उत्तेजनावश कह जाना दूसरी बात है। और सच पूछो तो, घृणा मैं किसी से नहीं कर सकता।—दुश्मन से भी नहीं। फिर तुम तो ..।

वह आगे 'अपनी हो' कहने ही जा रहा था, किन्तु फिर कह नहीं सका। उसकी आँखें लता के मुख पर थीं। रेस्तोराँ के सामने बिजली के तीव्र बल्ब का प्रकाश लता के मुख की भाव-भंगिमा को ग्रहण करने में उसका सहायक हुआ। उसने स्पष्ट रूप से देख लिया कि उसकी आँखें सजल हो रही हैं।

गंगा-पार से ही सावधानी के साथ कार ड्राइव करता हुआ ज्ञानप्रकाश बराबर इस घटना के कथोपकथन की मीमांसा करता आया है।—"उसने कहा—ना उस दिन तुमने मुझे मर क्यों नहीं जाने दिया? तुम इतने सुन्दर क्यों बने? जीवन की सारी महानता तुमने अपने ही हिस्से में क्या रख ली? मनुष्य न रहकर तुम देवता क्या बन गए? फिर मान लिया कि बन ही गये तो अब पूजा की सगी इस लता को ठुकराते क्या हो?

'उसने कहा है—मुझसे अब नादानी हो रही है। किन्तु तुम यह क्यों नहीं सोचता आया कि उसके निकट पहुँचने की तीव्रता में जहाँ से अपने का सम्मान नहीं पाती, वहाँ तो दुखी होती है।

होकर लता गाड़ी से उतर पड़ी और रेस्तोराँ की ओर पैर बढ़ाती हुई बोली—सभी अपना ही अर्थ तो देखते हैं, मैं क्यों न देखूँ ?

पर्दों से घिरे हुए एक कक्ष में दोनों ने आमने-सामने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। बेटर तुरन्त निकट आ गया। ज्ञानप्रकाश बोला—चाय, टोस्ट और केक।

बेटर जाने लगा, तो ज्ञानप्रकाश ने कहा—और देखो, गरम समोसे मिल सकते हैं ?

"हुजूर, अभी तैयार हुए हैं" बेटर ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो, दो प्लेट समोसे भी।" ज्ञानप्रकाश ने कहा।

बेटर चला गया। अब ज्ञानप्रकाश फिर लता की ओर देखने लगा। कुछ बोला नहीं वह। केवल लता के कुम्हलाये हुए म्लान मुख को ही देखता रहा। उसे बोध हुआ, सचमुच उसके भीतर एक द्वन्द्व चल रहा है—एक आँधी आ गई है। एकटक वह देख नहीं रही है। ओंठ फड़क उठते हैं। पलक अस्थिर हैं, भृकुटियाँ की नोकें आहत सर्पिणियों की पूँछ जैसी इधर-से-उधर नाच रही हैं।

ज्ञानप्रकाश कुछ कहने ही जा रहा था कि लता ने उसके दाएँ हाथ की अनामिका की ओर देखते हुए कहा—यह अँगूठी कब बनवायी ? इसका नग मुझे बहुत पसन्द आ रहा है।

ज्ञानप्रकाश उसकी इस बात को सुनकर पहले कुछ सशंकित हुआ। किन्तु फिर उसके मुख का भाव बदल गया। एक प्रकार

ज्ञानप्रकाश अब इनकार न कर सका। अँगूठी वह उतार लगा। यद्यपि उस समय एक आशंका से वह भीतर-ही-भीत कम्पित हो रहा था; तथापि अपनी उदार प्रकृति के कारण ल के इस छोटे-से प्रस्ताव को अस्वीकार भी तो वह नहीं कर सकत था। निदान, अँगूठी उतारकर उसने वहीं टेबिल पर रख दी।

अब भी लता ने लक्ष किया, उसने संकोच त्यागकर उ पहनाना दूर रहा, हाथ में भी नहीं दिया। किन्तु फिर किस प्रकार का और कोई विचार किये बिना उसने वह अँगूठी अप बाएँ हाथ की अनामिका में आप ही धारण कर ली।

इसी समय वेटर चाय की ट्रे और अन्य पदार्थ, विविध विविध प्लेट्स में, क्रम-क्रम से लाकर रख गया। एक-दो बार अँगुली को इधर-उधर करके लता ने देखा, अँगूठी वास्तव मे कीमती है। तब उसकी इच्छा हुई कि पूछे—कितने में पड़ी है, किन्तु फिर उधर से ध्यान हटाकर वह चाय ढालने लगी।

ज्ञानप्रकाश ने अपने आपको बहुत दृढ़, उदार, गम्भीर और कर्तव्य-निष्ठ मान रक्खा है। क्षुद्रता उसे छू नहीं गयी है। छोटी-छोटी बातों पर वह कभी ध्यान नहीं दिया करता। विपक्षी को कष्ट देने की अपेक्षा वह आपही कष्ट सहन कर लेता आया है। वह जानता है, ऐसा व्यक्ति छीना-झपटी के इस युग में, सांसारिक दृष्टि से, सदा घाटे में रहता है। किन्तु प्रश्न तो यहाँ उसकी प्रकृति का है—उसकी मानवता का।

ही बात याद हो आती। बार-बार वह यही सोचने लगता—ऐसा ही था, तो उसने अँगूठी आशा को ही क्यों न पहना दी!

प्रत्येक पदार्थ को चखती और क्रमशः समाप्त करती हुई लता भी इस समय बराबर यही सोच रही है कि क्या अँगूठी उसे उतारकर दे देनी चाहिए? पर प्रश्न के उत्तर में बार-बार वह इसी निश्चय पर जा पहुँचती है कि नहीं, ऐसा अवसर भी क्या बार-बार मिलता है!

ज्ञानप्रकाश थोड़ी देर मौन रहकर भी देखता रहा लता की ही ओर। इस रेस्तोराँ में पैर रखते समय उसने कहा था—सभी तो अपना अर्थ देखते हैं, मैं क्यों न देखूँ?

अब इस प्रश्न का ध्यान आने के साथ वह एक बार लता की बड़ी-बड़ी आँखों में समा-सा गया। उसे प्रतीत हुआ, ऐसी सुन्दर देह-यष्टि और ऐसी मादक मुसकान के साथ ऐसा उन्मुक्त हृदय-दान उसने कभी नहीं पाया, कहीं नहीं देखा। तब आँधी-सी उसके अन्तर में फैल गयी। सोचने लगा वह, ऐसे आत्म समर्पण को ठुकरा देना ही क्या मानवता है? लालसा की इस उमड़ी हुई सरिता के कूल पर आकर—उसको दूर तक फैली इस अगम रस-राशि से विमुख होकर—भाग खड़ा होना ही क्या पुरुषत्व है?

सभी खाद्यपदार्थ समाप्त होने आये। तब बेयरा फिर सामने आ खड़ा हुआ। ज्ञानप्रकाश ने लता की ओर देखकर पूछा—और कुछ?

[illegible]

[illegible] नहीं है। तुमको [illegible]

[illegible] नहीं सकती है। [illegible]

[illegible] नहीं हो सकता। जीवन के इस [illegible] पथ पर मैं चल नहीं सकता। किसी के भी प्यार को [illegible] मैं [illegible] नहीं सकता। यह बन्धन मुझे स्वीकार नहीं है। [illegible] मैं इस भेदभेद को मान नहीं सकता। किसी को भी निराश [illegible] मेरा उद्देश्य नहीं है। ज्ञान के पथ में [illegible] ही [illegible] का अनुभव, एक मात्र उसी की प्राप्ति, एक मोह है, एक [illegible]। मैं उसे तोड़ना चाहता हूँ। अन्धकार को भी देखना और समझना है मुझको। उसे भी मैं घृणा की दृष्टि से नहीं देख सकता। मैं किसी से भी घृणा नहीं कर सकता। एक से अत्यधिक विरक्त रहकर दूसरे के प्रति अनुदार बनना मैं नहीं मानता कि मनुष्य की शोभा है। चाँदी भी मुझे प्यारी है, सर्प को भी मैं मार नहीं सकता। किसी भी नारी के अश्रुकणों को मैं इन आँखों से छू नहीं सकता—पी नहीं सकता। मेरे जेब का यह रूमाल उठ पड़ेगा, मैं इन आँसुओं को पोंछ ही डालूँगा। फिर चाहे, मेरा यह हृदय फट जाय—विदीर्ण हो जाय!

और तब नारी को जैसे जीवन का प्रतीक मानकर वह बोल उठा,—अब दो गिलास ह्विस्की भी ले आओ क्वीन!'

और फिर ...... !

ही बात याद हो आती । बार-बार वह यही सोचने लगता—ऐसा ही था, तो उसने अँगूठी आशा को ही क्यों न पहना दी !

प्रत्येक पदार्थ को चखती और क्रमशः समाप्त करती हुई लता भी इस समय बराबर यही सोच रही है कि क्या अँगूठी उसे उतारकर दे देनी चाहिए ? पर प्रश्न के उत्तर में बार-बार वह इसी निश्चय पर जा पहुँचती है कि नहीं, ऐसा अवसर भी क्या बार-बार मिलता है !

ज्ञानप्रकाश थोड़ी देर मौन रहकर भी देखता रहा लता की ही ओर । इस रेस्तोराँ में पैर रखते समय इसने कहा था—सभी तो अपना अर्थ देखते हैं, मैं क्यों न देखूँ ?

अब इस प्रश्न का ध्यान आने के साथ वह एक बार लता की बड़ी-बड़ी आँखों में समा-सा गया । उसे प्रतीत हुआ, ऐसी सुन्दर देह-यष्टि और ऐसी मादक मुसकान के साथ ऐसा उन्मुक्त हृदय-दान उसने कभी नहीं पाया, कहीं नहीं देखा । तब आँधी-सी उसके अन्तर में फैल गयी । सोचने लगा वह, ऐसे आत्म-समर्पण को ठुकरा देना ही क्या मानवता है ? लालसा की इस उमड़ी हुई सरिता के कूल पर आकर—उसकी दूर तक फैली इस अगम रस-राशि से विमुख होकर—भाग खड़ा होना ही क्या पुरुषत्व है ?

सभी खाद्य पदार्थ समाप्त होने आये, तब वेटर फिर समक्ष आ खड़ा हुआ । ज्ञानप्रकाश ने लता की ओर लखकर पूछा—और कुछ ?

लता बोली—मुझे तो अब कुछ और खाना नहीं है। तुमको जरूरत हो, तो ..!

ज्ञानप्रकाश कुछ तरंगित होकर बोला—बड़ी सरदी है। क्यों?

लता मुसकराने लगी; जैसे यही उसकी बात का उत्तर हो!

तब ज्ञानप्रकाश के मन में आया—नहीं हो सकता। जीवन के इन दुर्गम पथ पर मैं चल नहीं सकता। किसी के भी प्यार को अवहेलित मैं कर नहीं सकता। यह बन्धन मुझे स्वीकार नहीं है। मनुष्य होकर मैं इस भेदाभेद को मान नहीं सकता। किसी को भी निराश करना मेरा उद्देश्य नहीं है। ज्ञान के पथ में प्रकाश ही प्रकाश का अनुभव, एक मात्र उसी की प्राप्ति, एक सीमा है, एक प्राचीर। मैं उसे लाँघना चाहता हूँ। अन्धकार को भी देखना और समझना है मुझको। उसे भी मैं घृणा की दृष्टि से नहीं देख सकता। मैं किसी से भी घृणा नहीं कर सकता। एक से अत्यधिक विजड़ित रहकर दूसरे के प्रति अनुदार बनना मैं नहीं मानता कि मनुष्य की शोभा है। चींटी भी मुझे प्यारी है, सर्प को भी मैं मार नहीं सकता। किसी भी नारी के अश्रुकणों को मैं इन आँखों से देख नहीं सकता, सह भी नहीं सकता। मेरे [illegible] [illegible] [illegible] उबाल उठ पड़ेगा, मैं उन [illegible] को पी ही [illegible]। फिर चाहे, मेरा यह हृदय फट जाय, विदीर्ण हो जाय!

और तब नारी [illegible] जीवन का [illegible] मानकर [illegible] उठा—[illegible]

और फिर [illegible]!

उन्तिम

नित्य सायंकाल आकर आशा खाना रायसाहब के यहाँ ही खाती थी। किन्तु आज उसने नहीं खाया। बोली—भूख नहीं है। मन्दा ने बड़ी जिद की; किन्तु आशा ने उसका अनुरोध भी आज स्वीकार नहीं किया।

रातभर उसको नींद नहीं आयी। स्पष्ट रूप से उसे विदित हो गया था कि ज्ञानप्रकाश के साथ उसका क्रीड़ा-कौतुक लता को सहन नहीं हुआ है। उसकी इस ईर्षा के भीतर निस्सन्देह उसका हृदय है। पर उसका यह विद्रोह मेरे प्रति उतना नहीं है, जितना वर्तमान परिस्थिति से उत्पन्न हमारी आज की विवशता के प्रति। वह जानती है कि जब-जब मेरे विवाह की बात चली है—मैने सदा यही तो कहा है—'ऐसी जल्दी क्या है।' मेरी इस विरक्ति, इस उदासीनता, की एक सीमा होनी चाहिए थी—एक मर्यादा। किन्तु मैंने उसकी रक्षा कहाँ की। तब मेरे विवाह की बात मेरी समस्या न होकर उसकी समस्या बन गयी। मै अगर जीवन-भर कुमारी बनी रहूँ, तो क्या यह आवश्यक है वह भी आजीवन अविवाहित ही बनी रहे।

और भी एक बात है। आज वह आशा करती थी कि दस बजे के लगभग ज्ञानप्रकाश उसके निकट आयेगा। लता उसके साथ सिनेमा देखने जो गयी है। उससे कुछ बातचीत अवश्य हुई होगी। उसी को जानने-सुनने के लिए वह अत्यधिक उत्सुक

थी। वह सोचती रही, उन्होंने कहा था कि लता की दवा मुझे करनी ही पड़ेगी। तभी तो उसकी दवा करने के सिलसिले में वे खुद ही मरीज हो बैठे।

आज आशा की यह प्रतीक्षा व्यर्थ गयी। ज्ञानप्रकाश इतनी देर से और ऐसी अवस्था में लौटा कि फिर आशा से मिल सकना उसके लिए दुष्कर हो गया। किन्तु इससे क्या, आशा ने प्रतीक्षा तो की। हृदय के पावन अणु-परिमाणुओं का यह अबाध चिन्तन, शरीर के लोम-लोम और रन्ध्र-रन्ध्र का यह एकान्त आह्वान और चिर मानिनी, 'चिर सुहागिनी और चिर आह्लादमयी का यह एकान्त क्रन्दन व्यर्थ तो गया।

अब लता की एक-एक बात, उसका एक-एक दृष्टि-विक्षेप मूकता और उदासीनता, मुसकराहट और भ्रू-विलास, गुनगुनाहट और शब्दावली अपने वास्तविक स्वरूप में उसके सामने आने लगी। याद आया उसे कि जब उन्होंने कहा कि साल बीत रहा है और मुझे एक उपन्यास तक पढ़ने का अवसर नहीं मिला, तो पान लगाते हुए कैसे तिक्त व्यङ्ग्य के साथ लता ने कहा था—'लेकिन सिनेमा तो प्रायः देखते ही हैं! . इस पर जब उन्होंने हिसाब पेश कर दिया, कहा कि इधर छै महीने में केवल एक बार गया हूँ, तो वह तत्काल भरी-भरी-सी कैसी उभर पड़ी थी! कैसे दुस्साहस के साथ उसने कह दिया था—मुझे विश्वास नहीं होता।

" लेकिन अब प्रश्न यह है " आशा सोचने लगी कि इसमें लता का दोष क्या है ? कोई किसी को चाहता है, तो यह उसका दोष है, आशा नहीं मानती—नहीं मानना चाहती। हाँ, एक बात विचारणीय अवश्य है कि वह, जब यह जानती है, या जान ही गयी है, कि ज्ञानप्रकाश दीदी का हो चुका है, तब उसे जरा-सा इसका भी विचार करना था कि अपने प्रेम को इस रूप में प्रकट करना उसके लिए शोभन कहाँ तक है, श्रेयस्कर कितना है।

तब यह सब मिलकर जैसे एक तेज हवा का झकोरा हो, बवण्डर, आशा के ऊपर आ पड़ा। चारों ओर से चक्कर काटता हुआ वह उस पर ऐसा फैल गया, बिखर पड़ा, कि आशा उसमें समाहित हो उठी। किसी ने जैसे एक तीर छोड़ दिया हो और वह लक्ष्य-वेध करता हुआ अस्थि-जाल में अटक गया हो। इधर-से-उधर करवट तक न ले सकी वह। हृदय उसका भीतर-ही-भीतर भट्ठी की तरह धधकने लगा।

कण्ठ उसका अब सूखने लगा था और सर दर्द कर रहा था। वह उठी और उठकर उसने एक गिलास ठंडा जल पी लिया।

जाड़े की यह रात है, फिर अँधेरी। अत्यन्त शीतल हवा चल रही है। किन्तु आज आशा को इन सब बातों का कुछ भी ध्यान नहीं है। रायसाहब का बँगला है। मन्दा अलग लेटी हुई प्रगाढ़ निद्रा में लीन है। सब लोग सो रहे हैं। इस समय डेढ़

तब आशा चुपचाप लौट पड़ी। जैसे धीरे-से उसने दरवाज़ा खोला था, वैसे ही बन्द भी कर लिया।

दूसरे दिन जब आशा चलने लगी, तो उसे ज्वर हो आया था। उसका सर फटा जा रहा था और बायीं ओर की पसली भी दर्द कर रही थी। पैर ठीक तरह ज़मीन पर पड़ नहीं रहे थे। तो भी साहस करके वह उठी और मन्दा के पास आकर बोली—मेरी तबियत आज गड़बड़ है मन्दा। सम्भव है, मैं अब आ न सकूँ। तुम ठीक तरह से रहना। कभी कोई शिकायत हो, तो बाबू से कह देना। संकोच न करना, भला।

और चलते समय उसने उसका एक हाथ लेकर चूम लिया।

मन्दा बोली—लेकिन, तुम यह सब इस तरह से कहती क्या हो दिदिया। तबियत तो एक-आध दिन में ठीक ही हो जायगी।

आशा बोली—सो तो ठीक है। तो भी मैंने योंही कह दिया।

मन्दा के पास से घूमकर फिर आशा रायसाहब के पास भी गयी। वे उस समय घूमने के लिए जाने की तैयारी कर रहे थे। आशा को सामने देखकर प्रसन्नता-पूर्वक, स्नेह के साथ, बोले—जा रही हो? अच्छा जाओ। कुछ कहना तो नहीं है?

सर नीचा करके अँगुली से अँगुली खोदती हुई आशा ने धीरे से कहा—आज मेरी तबियत गड़बड़ है। सम्भव है, अब मेरा आना न हो सके।

तब आशा को दुखी देखकर रायसाहब भी खड़े-खड़े बोले—

बैठो बेटी। कुरसी पर बैठ जाओ। अभी तक मैं समझता था, तुम मन्दा की केवल गुरु-दीदी हो; किन्तु मुझे आभास मिला है, तुम इसकी अनन्य आत्मा भी हो। तभी यहाँ तुम्हारी जरूरत आ पड़ी है। मैं चाहता हूँ, सदा के लिए तुम यहीं रहो। आज तबियत गड़बड़ है, कोई चिन्ता नहीं। दो-एक दिन में अच्छी हो जायगी। तुम फिर आओगी। यहाँ तुमको किसी प्रकार का कष्ट न होगा। मन्दा अब तुम्हारे चार्ज में रहेगी। दूर होकर और अन्यत्र जन्म लेकर भी, तुम, जान पड़ता है, मेरी ही सन्तान हो। मैं नहीं जानता, आज क्यों यह भाव मेरे मन में आ रहा है। मैं आशा करता हूँ, शीघ्र ही भगवान मेरे इस भाव की रक्षा करेगा!

'बेटी, मैं बड़ा अभागा हूँ। यह सारा-का-सारा वैभव किस काम का, जब मेरी सन्तान आन्तरिक क्लेश को सहन न करके आत्मघात तक करने पर सन्नद्ध हो जाय। पर मुझे विश्वास हो रहा है, तुम्हें मन्दा के साथ रखकर मेरे अन्तर की ज्वाला अब अवश्य शान्त हो जायगी।

कहते-कहते रायसाहब गद्गद हो उठे। उनकी आँखों में अश्रु झलक पड़े, कण्ठ उनका भर आया। उधर मर्माहत होकर उसी क्षण आशा उनके चरणों पर झुक गयी।

रघुनाथबाबू, रायपत्नी, मन्दाकिनी, दुलारे, मटरू, कटोरी तथा महराजिन आदि लोग भी कमरे के द्वार पर खड़े-खड़े यह कौतुक देख रहे थे। सभी मर्माहत थे। किसी के मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहा था।

आशा के सिर पर हाथ रखकर रायसाहब बोले—सदा सुखी रहो बेटी। तुम्हारे जीवन की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हों। सुख-दुख, विवशता और धर्म-संकट तुम्हारे विमल मानस को कभी झंझावात से ग्रस्त और दिग्भ्रान्त न बना सकें। जगत के कल्याण और जीवन के आदर्श-पालन में तुम्हारा पथ सदा स्पष्ट और प्रशस्त रहे। बस, यही तुमको मेरा आन्तरिक आशीर्वाद है।

आँखों में आँसू, आत्मा में अमृत और हृदय में एक झंझावात—एक ज्वालामुखी—लेकर आशा बरामदे में होकर गाड़ी की ओर जाने लगी। यकायक उसकी आँखें उसी कमरे के दरवाजे पर जा पड़ीं, जिसमें ज्ञानप्रकाश अभी तक सो रहा था। किन्तु वहीं पर रायपत्नी उसके सामने पड़ गयीं और आशा उन्हें नमस्कार करने लगी।

रायपत्नी ने कहा—मैं तुमसे एक बात कहना भूल ही गयी थी। सौ-सौ रुपये के मेरे जो दो नोट खो गये थे, जिनके सम्बन्ध

में नानू मुझसे लड़ पड़ा था, उनका पता लग गया। दिवाकर उन्हें उठा ले गया था। कुछ रुपये उसने खर्च भी कर डाले थे। शेष वह खुद लौटा गया है। सच !

आशा दिवाकर के इस रूप की बात सुनकर अवाक् हो उठी।

रायपत्नी की गोद में इस समय धर्मप्रकाश था। उछल-उछल कर वह आशा की गोद में आने की चेष्टा करने लगा।

तब रायपत्नी बोलीं—पहचानता है ! क्यों रे ? अच्छा बोल तो, यह तेरी कौन है ?

लेकिन धर्मप्रकाश ने केवल हाथ फैला दिये।

मुँह चूमती हुई रायपत्नी बोलीं—यह तेरी भाभी है, धम्मू।

आशा ने दृष्टि नीची कर ली।

तब रायपत्नी बोलीं—सब तै हो गया है आशा। मुहूर्त शोधने भर की देर है।

आशा ने तब उनके चरणों पर भी मस्तक रख दिया।

दक्षिण हाथ से उसके कंधे को जरा-सा छूकर रायपत्नी ने कहा—सदा सुखी रहो।

पास ही खड़ी-खड़ी मन्दा प्रसन्नता के मारे उछल पड़ी। बोली—लड्डू खिलाओ दीदी, लड्डू ! किन्तु आशा को उदास देखकर वह फिर कहने लगी—अम्मा, दीदी की तबियत आज अच्छी नहीं है। ऐसे समय जाने की जरूरत ही क्या है ! यहीं क्यों न बनी रहे। डॉक्टर साहब तो प्रायः नित्य ही आते रहते हैं।

पर आशा ने कहा—नहीं, अब मैं जाऊँगी।

और वह झट से गाड़ी में जा बैठी। पीछे-पीछे मन्दा भी गाड़ी तक चली आयी। बोली—तबियत ठीक हो जाने पर आओगी न दीदी? या जब दूल्हा लेने जायँगे, तभी आओगी?

इस समय आशा की आँखों में आँसू भर आये। वह कुछ बोल न सकी।

गाड़ी स्टार्ट हो गयी थी। लेकिन ज्ञानप्रकाश अब भी सो रहा था।

तीन

रास्ते में आशा का ताप-मान कुछ और बढ़ गया था। बैकसीट पर ही शाल ओढ़कर वह लेटी हुई थी। ठंडी सड़क आ जाने पर मिल गया दिवाकर। गाड़ी देखकर निकट आते ही उसने कहा—ज़रा खड़ा करना दुलारे। मैं भी चलूँगा।

दुलारे ने गाड़ी खड़ी कर दी। दिवाकर भीतर आते ही चौंक पड़ा। बोला—अरे, तुम तो लेटी हुई हो आशा!

सिर खोल दिया आशा ने। उठने की भी चेष्टा की; किन्तु फिर दिवाकर ज़रा-सी ही जगह पाकर उसके सिरहाने बैठ गया। मस्तक पर हाथ रखकर वह बोला—अरे! तुमको तो बड़े ज़ोर का बुखार है। घर पहुँचा दूँ, तब डाक्टर गंगोली को लिवा लाऊँगा।

आशा कुछ बोली नहीं। उठ बैठी वह। दिवाकर ने कहा—बैठो मत, तकलीफ होती होगी। लेट जाओ। लेटते न बनता हो, तो मेरे इस घुटने पर सिर रख लो। संकोच मत करो इस समय।

आशा ने तब उसके घुटने पर सिर रख लिया।

दिवाकर बोला—कई दिन से भेंट नहीं हुई थी। बड़ी इच्छा थी तुमसे मिलने की। बड़े दिन की छुट्टियाँ आ गयी हैं। कल मैं घर जाना चाहता हूँ। अम्मा की चिट्ठी आयी है।

आशा कुछ नहीं बोली। जरा-सा खिसका लिया उसने अपने बदन को। किन्तु फिर भी जब लेटने में सुविधा न हुई तो वह सीट की पीठ के गद्दे से लगकर बैठ गयी। आँसू अब भी उसकी आँखों में भरे हुए थे। आर्द्र कण्ठ से वह बोली—तुम भी मुझे माफ कर देना दिवाकर।

मर्माहत होकर दिवाकर बोल उठा—अरे जरा-से ज्वर से तुम इतना घबरा जाती हो! पगली बन रही हो! फिर मैं तो एक समा-पतित व्यक्ति हूँ। मेरे लिए तुम ऐसी बात करती हो! जीवन के घटाटोप में पड़कर विचार-विमर्श से मैं सदा दूर रहा हूँ। सोच-समझकर मैंने कभी कोई काम नहीं किया। प्रेम को मैं एक प्रयोग और जीवन को व्यापार मानता आया हूँ। मैंने नहीं जाना कि इच्छा-शक्ति से परे आत्मा और उसका केन्द्र भी कोई परमात्मा भी है। कभी कोई तर्क-वितर्क मन में उठा भी है, तो मैंने भावना की दुनि-या ही प्रतिरूप समझा है। जन्मान्तर भी कोई वस्तु है, स्वर्ग और

स्वर्ग—पाप और पुण्य—भी दो पृथक्-पृथक् सम्भावनाएँ हैं, मैंने कभी अनुभव नहीं किया। मैं नहीं जानता था कि प्रेम क्या वस्तु है। किन्तु जब उत्तरोत्तर मुझसे अपनी आन्तरिक घृणा व्यक्त करके तुमने मुझमें बदल जाने की भावना उत्पन्न कर दी, तब मेरी बन्द आँखें खुल गयीं। मैंने अनुभव किया कि घृणा भी प्रेम का रूप बदलकर आती है और मनुष्य घृणा उसी से करना चाहता है, जिससे वह कोई आशा रखता है।

आशा कुछ बोली नहीं। बोल सकने की स्थिति में वह नहीं थी। तो भी एक बार पलक उठाकर उसने दिवाकर की ओर देखा। और दिवाकर उस मूक और उदार, शान्त किन्तु पावन स्नेह-सिक्त, गम्भीर किन्तु अश्रुविगलित दृष्टि को देखकर जैसे नितान्त अभिभूत हो उठा।

घर आ गया था। दिवाकर सहारा देकर आशा को उठाने लगा। आशा कुछ बोली नहीं। चुपचाप धीरे-धीरे अन्दर जाने लगी।

लता छत पर बैठी धूप ले रही थी। मुनिया सफाई में लगी थी। जानकी ने जो आशा को दिवाकर के सहारे आते देखा, तो झट से वह उसके पास आ गयी। बोली—अरे, तेरी तबियत फिर खराब हो गयी!

झट से दिवाकर बोला—अच्छा तुम बिस्तर लगा दो ठीक तरह से। मैं इन्हें ऊपर लिये चलता हूँ।

आँगन पारकर आशा सीढ़ियाँ चढ़ रही थी। जब आधी सीढ़ियाँ चढ़ चुकी, तो वह बलात् शिथिल होने लगी। दिवाकर के कन्धे पर उसने सिर रख लिया। फिर वह वहीं बैठ गयी। ज्वर का वेग अब और बढ़ आया था। बैठे-बैठे वह अचेत-सी होने लगी। तब दिवाकर ने उसे अपने दोनों हाथों पर उठा लिया। शेष सीढ़ियाँ पारकर उसने कमरे के अन्दर उसे पलँग पर लिटा दिया। सम्भवतः जानकी पास ही बैठ गयी। देह पर हाथ रखते ही घबराकर वह बोली—हाय अब मैं क्या करूँ!

उसका कण्ठ भर आया था, आँखों से आँसू टपक रहे थे।

दिवाकर ने कहा—घबराओ मत अम्मा। मैं अभी डॉक्टर गांगोली को लिये आता हूँ।

और बस इतना कहकर वह चला गया।

नीचे के कमरे में आशा के गमनागमन और दिवाकर [illegible] अम्मा की बातचीत का स्वर सुनकर [illegible] पास चली आयी। पर इस समय [illegible] था। [illegible]

यदि दिवाकर [illegible]

बीमार तो नहीं हो गयीं, यही सोचकर वह फिर छत पर ठहर न सकी।

लता जब आशा के निकट आकर बोली—दीदी, कैसी तबियत है ?—तब भी आशा के पलक झपके हुए थे। वह कुछ बोल न सकी। हाँ, उसकी आँखें खुल गयीं। सिर से पैर तक उसने एक बार लता को देखा। देखा, बायें हाथ की अनामिका मे वह आज एक अँगूठी भी पहने हुए है। वही अँगूठी, जिसे अभी कल तक ज्ञानप्रकाश पहने हुए था । तब और कुछ न कहकर उसने करवट बदल ली।

लता ने मस्तक पर हाथ रखकर जो देखा, तो अनुभव किया कि ज्वर वैसा मामूली नहीं है। एक अमांगलिक आशका से उसका हृदय धक् धक् करने लगा। अँगूठी पर भी उसका ध्यान चला गया। रात की घटनाएँ यों ही उसके अन्तराल मे झंझा-वात की भाँति गर्जन-तर्जन कर रही थीं। उसे प्रतीत होता था, उसके मुँह पर काजल पुत गया है। दीदी, अम्मा और ज्ञान-प्रकाश—कोई भी तो ऐसा नहीं है, जिसके समक्ष वह सिर उठा कर चल सके। तब उसके सामने यकायक अँधेरा-सा छा गया।

इसी समय आशा कराह उठी—आह !

जानकी निकट आकर उस पर झुक पड़ी। बोली—दर्द होता है क्या ?

आशा ने माँ का हाथ-पकड़कर बाईं ओर की छाती पर एक ओर रखकर धीरे-से कहा—यहाँ।

डोलती लता बोली—जान पड़ता है, सर्दी लग गयी है।

आशा चुपचाप पड़ी है। एक दिन था, जब अस्वस्थ हो जाने पर प्रत्येक घड़ी वह ज्ञानप्रकाश के ही स्वप्न-चित्र देखा करती थी। किन्तु आज तो उन सारे-के-सारे स्वप्न-चित्रों पर जैसे कोहिरा या धुआँ छा गया है। एक निःश्वास लिया उसने और करवट बदलने की चेष्टा की। किन्तु उसी क्षण उसे खाँसी आ गयी।

जानकी बोली—नीचे से अँगीठी में कोयला तो सुलगाकर ले आ। गुनिया से कहना, और काम बन्द कर दे।

लता नीचे चली गयी।

किन्तु यह कैसी खाँसी है कि बन्द ही नहीं होने आ रही है! खाँसते-खाँसते शरीर की सारी नसें तन गयी हैं, मुँह लाल हो गया है और आँखों से आँसू झलक आये हैं। साँस भीतर समा नहीं रही है और पसलियाँ धौंकनी जैसी चल रही हैं।

जानकी पलँग पर आ गयी। बोली—'बैठकर साँस लेने से शायद कफ गिर जाय।' और उत्तर की प्रतीक्षा न करके उसने कन्धे से हाथ लगाकर उसे बैठा दिया। वह स्वयं सिर की ओर, पीछे, सहारा देकर बैठ गयी। इसी समय एक अत्यन्त गम्भीर घरघराहट को लेकर आशा को खून की फुत्कार हुई। कतरे-के-कतरे पत्तों पर एक साथ गिर पड़े।

अपनी समस्त साधना उसके चरणों पर उँडेल देता है! यही तेरी मनुष्यता है?

सोचकर देख रे पिशाच, स्पष्ट रूप से यह तेरी कामुकता है। असंयम से भोगी ऐन्द्रिक सुख की उच्छृङ्खलता को तूने मानव-प्रकृति का जामा पहनाने की दुश्चेष्टा की है! एक नारी की एकान्त निष्ठा और उसकी पावन अर्चना को, उसके अलौकिक जाज्वल्यमान आरती-थाल की रश्मि-मालाओं को, तूने अपनी पशुता के नाम पर बलि दी है! तूने उसके वक्ष पर झूमते हुए फूलों के हार पर पद-प्रहार किया है! जीवन की यथार्थता की समीक्षा करते-करते तूने अयथार्थ को गौरव दिया है! पवित्र गंगाजल से आचमन करने के बजाय तूने गंदे नाले में मुँह लगा दिया है। यही तेरा ज्ञान और प्रकाश है? दर्पण में अपना मुँह तो देख ले जरा! देख ले कि तेरे मुँह से कितनी दुर्गन्ध फूट निकली है!—देख ले कि तेरे शरीर का अणु-अणु आज गन्दे कीटाणुओं से कैसा भरा हुआ है!—देख ले कि तेरा वह उज्ज्वल भाल आज कैसा काला पड़ गया है। आँखों की तेरी वह शुभ्र-ज्योति कैसी मन्द और फीकी पड़ी हुई है! कहाँ गया रे पामर, तेरा वह दर्प और अभिमान कि तू आशा को मृत्यु के मुख से भी निकाल सकता है!

तू यथार्थ को देखना चाहता है? तो आज अपनी एक-मात्र निधि इस आशा के अर्घ्यदान को पी तो जा! सोच तो ले,

जीवन के अणु-अणु मे समाये हुए आशा के अजस्र प्रेम-निर्झर को. भूल तो जा रे उसके उन अपतिम पावन कलहास को ! देखें तो तेरा वह पैशाचिक पौरुष ! है इतना सामर्थ्य तुझमे ? दु ख-शोक की अनुभूतियो से परे हो जा ! काट तो डाल जीवन के सारे भ्रामक बन्धन को ! भूख-प्यास और शयन की मर्यादाओ से बाहर चला जा ! वस्त्रो को उतार फेंक : क्योंकि वे भी बन्धन है। जिन माता-पिता और गुरुजनों की गोद मे खेला-खाया, हँसा और इतना बडा बना, उन्हे मूर्ख और पाखण्डी, प्यूरिटन और अन्ध-विश्वासी कह-कहकर विश्व-भर में नाचता फिर ! मस्तक की ठोकरे दे-देकर मर्यादा की दीवारो को तोड़ डाल ! सड़क पर पड़ी पाशव अस्थियो के टुकड़ो को दाँत से तोड़कर उन्हे दाँत की ही समानता दे डाल ! पर्वतो को धराशायी बनाकर पावन-अपावन. उच्च और निम्न. के अन्तर को एक बार धूल में मिला दे ! विश्वव्यापी भकम्प बुला ले एक बार !!

"होपलेस." कहकर डॉक्टर को गये हुए देर हुई। तो भी दिवाकर उसके यहाँ जाकर दवा ले आया है। जानकी रोती जाती है और आशा की छाती पर दवा मलती जाती है। लता उसके आज्ञानुरूप काम कर रही है : किन्तु भीतर से वह जैसे निर्जीव है। कभी जब उसकी आत्मग्लानि बाहर उभर आना चाहती है. तब वह भी ठंढी साँस भरकर सूने आकाश की ओर ताकती रह जाती है।

दोपहर कभी की हो चुकी है। जाड़े की धूप चारों ओर फैल रही है। किन्तु आज उसमे वह निखरता कहाँ है! लता ऊपर धूप खाने कहाँ जा सकी है! किसी के मुँह मे पानी का एक बूँद तक नहीं गया है। ज्ञानप्रकाश घंटों से एकरस चुपचाप बैठा है। बहुत हुआ, तो एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान पर बैठ गया है। दिवाकर जब डॉक्टर के यहाँ से दवा लेकर यहाँ आ गया था, तब एक बार धीरे-धीरे वह भी उसके यहाँ हो आया था। पर आज उसने डॉक्टर से विशेष बातचीत नहीं की। आज सब कुछ जान लेने पर भी उसे ड्रिंक करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी! आज तो उसे स्मरण नहीं आया कि कभी-कभी उसी वस्तु को वह अपना ग़म ग़लत करने के लिए पीता रहा है!

तीसरे प्रहर आशा ने यकायक आँखें खोल दीं। चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसने देखा। देखा, ज्ञानप्रकाश मूर्तिवत् बैठा है, और लता सिसकियाँ भरती हुई रो रही है। जानकी ने ज्यों ही उसकी कुछ चेतन चेष्टा देखी, तो वह बोली—बेटा, ज़रा इधर तो आना।

ज्ञानप्रकाश तुरन्त पास आ गया। उसके निकट आ जाने पर आशा ने जो उसकी ओर देखा, देखा कि आज उसके मुख पर वह स्वाभाविक आभा नहीं है, तो उसका भी कण्ठ भर आया। आँखें उसकी अश्रुकणों से चमकने लगीं। अत्यन्त क्षीण स्वर मे उसने कहा—मेरे लिए दुःखी मत होना!

बस, इतना कहकर आशा ने फिर आँखें मूँद लीं। लता और जानकी दोनों तब फूट-फूटकर रोने लगीं। दिवाकर कार्यवश नीचे चला गया था। ऊपर आने पर जब उसने यह हाल सुना, तो वह भी अपने को सम्हाल न सका।

क्रन्दन करता हुआ वह बोला—मैंने अपने आपको बदल डाला है आशा, तो भी तुम जा रही हो! देखो, ऐसा न करो। मेरी ओर नहीं देखना चाहती थीं, न सही, किन्तु अपने ज्ञानप्रकाश की ओर तो देखो!

झर-झर-झर-झर रे वेदना के गान!

सब लोग रोने में लगे हुए थे। इसी समय ज्ञानप्रकाश चुपचाप वहाँ से नीचे चला आया और फिर घर से बाहर हो गया। उसकी कार अब भी दरवाजे के निकट खड़ी हुई थी। आज चलते समय उसने किसी से कुछ नहीं कहा, यद्यपि उसे इतना स्मरण हो आया कि अभी कल ही तो यहाँ से चलते हुए उसने आशा से कहा था—जाता हूँ, किसी तरह की चिन्ता न करना।

धीरे-धीरे सड़क पर आकर ज्ञानप्रकाश खड़े-खड़े चारों ओर देखने लगा। प्रत्येक आदमी अपने-अपने ढंग से काम में लगा हुआ था। घास की गठरी सिर पर लादे हुए एक घासवाली जा रही थी। लोंगी उसकी चढ़ी थी और खुरपी गठरी में खुसी हुई थी। पैरों में पड़े कसकुट के पैजना बजते जाते थे। एक मुसलमान बकरे को कान पकड़कर घसीटता हुआ लिये जा रहा था और

बकरा जोर के साथ में-एँ में-एँ चिल्ला रहा था। दाएँ ओर की कोठी के दूसरे खण्ड पर स्त्रियाँ सोहर गा रही थीं।

धीरे-धीरे वह धोबियों के मकानों के पास जा पहुँचा, जहाँ कुछ लोग बैठे हुए चिलम पी रहे थे। वह दो-चार मिनट तक खड़ा-खड़ा उन्हीं लोगों की बातचीत सुनता रहा और फिर एक ओर जाता हुआ अदृश्य हो गया।